

भूमिका ।



भारतकी भूमि रत्नगर्भा कही जाती है, वास्तवमें यह उपाधि सत्त्व-शून्य नहीं है। अवश्यही इसके सुविशाल गर्भमें अनन्त रत्नराशि संस्थापित हैं किन्तु रत्न कहानेसे हीरा-लाल-पन्ना आदि मूल्यवान् कंकर पत्थर ही केवल रत्न मान लिये जाँय सो बात यहां नहीं है। ऐसे पत्थर रत्न तो अन्यत्र भी उपलब्ध होसकते हैं परन्तु भारतभूमिके पवित्र गर्भमें 'नवरत्न, नररत्न, नारीरत्न, विद्यारत्न, वस्तुरत्न और ग्रन्थ रत्नादि' अमूल्य और बहुमूल्य विविध रत्न वह भरे हुए हैं, जिनकी अन्यत्र उपलब्धि असाध्य ही नहीं, असम्भव भी है यहांके किसीएक रत्नको उठाकर अवलोकन कीजिये—एक एक रत्नमें अनेकानेक सद्गुण प्रतीत होते हैं।

यदि भारतीय रत्नराशिका प्रदर्शन करायाजाय तो उसके लिये बड़ेभारी आयोजनकी आवश्यकता है। इस क्षुद्रकाय भूमिकास्यलमें प्रदर्शनी तो क्या, रत्ननाम संग्रह करनेका भी सुप्रबन्ध नहीं हो-सकता है। और सब छोड़कर यदि अन्यान्य रत्नोंके अतिरिक्त यहाँ केवल ग्रन्थरत्नोंका ही प्रदर्शन करना चाहें तो उसके लिये भी आज आवश्यक समय, सामग्री और स्थल नहीं है और न उनकी सूचीमात्र ही यहाँ देसके हैं। इस कामके लिये मद्रचित "भारतमें रत्न" नामक पुस्तक आवश्यक है। किन्तु ग्रन्थरत्नोंमेंसे नष्टनेका जो एक रत्न आज हमारे हाथमें है, केवल उसीका यहाँ कुछ परिचय देना उचित, आवश्यक और लाभदायक समझते हैं।

इस ग्रन्थरत्नका नाम "समरसार" है। इसको श्रीरामचन्द्र सोम-याजीने स्वशास्त्रोंका सार लेकर ८५ पचाशी श्लोकोंमें संग्रह किया है। इसमें छोटे छोटे और उपयोगी केवल दश प्रकरण वर्णन किये

गये हैं । कर्ण, कंठ, करांगुलीय भूषणोंमें जडने योग्य यह एक छोटासा किन्तु अमूल्य रत्न है । यद्यपि समरको लक्ष्यदेकर युद्धोपयोगी सारका इसमें संग्रह किया है । तथापि समरके सिवाय सांसारिक कार्योंमें भी यह संग्रह बहुत उपयोगी और आवश्यक है ।

युद्धके निमित्त यात्रा करनेवाले दो नरेशोंमेंसे विजयश्री कित्तको मिलेगी ? कित्तसमय किस प्रकार गमन करनेसे कम सेनावाला राजा कैसे जीत सकेगा ? असंख्य सेनासे घिराहुआ क्षुद्रकाय किला कित्त बलके आश्रयसे अटूट रहसकेगा ? एक बलवान् मल्लसे मुठभेर होजाने पर निर्बल मल्ल कित्त युक्तिसे उसे चित्त करेगा ? अभियोगमें फँसेहुए दो अभियुक्तोंमेंसे न्यायालयमें कौन बरी होगा ? शास्त्रार्थ करतेहुए दो द्विभ्विजयी विद्वानोंमें कित्तका पक्ष मान्य रहेगा ? कित्त साल संवत्, मास, दिनमें कौन वस्तु कित्तनी मँहगी, सस्ती बिकसकेगी ? कौनसा सेवक, स्वामीको सम्पत्ति सुख देनेवाला होगा ? अथवा कित्त नौकरकी योजनासे मालिकको ऋणग्रस्त होना पडेगा ? दिन रातमें मनुष्यका मन कित्त कित्त घातपर कब कब चलायमान होगा ? कित्त समय कौन काम करनेसे क्या लाभालाभ मिलेगा ? कित्त स्वरसंचालनकी शीतिले दम्पतिप्रेम प्रगाढ होगा ? और वर्ष दो वर्ष वा दश बीस वर्षतक जीवित रहने अथवा कबतक मरजानेकी चिन्तासे निश्चित होनेका कित्त सरल उपायसे निश्चय होसकेगा ? (कहांतक गिनावें) इत्यादि इत्यादि अनेकों बातोंका विचार समरसारमें भलेप्रकार वर्णन किया है । और सर्वतोभद्र जैसे कोई कोई प्रकरण तो इसमें ऐसे हैं जिनसे एकही प्रकरणसे अगणित बातोंका क्षयोद्भव शुभाशुभ सत्य विदित होता है ।

विशेष महत्त्व और आरामकी बात इसमें यह अधिक है कि वर्ष जन्मपत्रादि देखने, गणितकरने और पतड़ा पोथी हँडनेकी इसमें विशेष

झंझट नहीं करनी पड़ती है जो कुछ अच्छा बुरा फल हो चटपट मालूम होजाता है । और वह सच्चा मिलता है । कितने बड़े गौरवकी बात है कि एक छोटेसे ग्रन्थमें संसारका महोपकार करनेवाले बड़े बड़े काम भरे हुए हैं । यह सब कुछ होनेपर भी आजतक यह ग्रन्थ भाषाटीका सहित कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है ।

इस ग्रन्थपर संस्कृतमें दो टीका प्राप्त हुई हैं । प्रथम भरतटीका है और दूसरी रामटीका है किन्तु इन दोनों उत्तम टीकाओंके होने परभी किसी किसी स्थलमें यह ग्रन्थ ऐसा अड़जाता है कि विद्वानोंको भी इसके चलानेमें कुछ श्रम करना पड़ता है । अत एव विद्वान्से लेकर सर्वसाधारणपर्यन्त यह ग्रन्थ सबके उपयोगमें आसके ऐसा होनेके लिये श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीके आग्रह और चौधू राजके आश्रित ज्योतिषरत्न पं० झंझालालजीकी अनुमतिसे मैंने इसकी कई-एक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ एकत्र करके संस्कृतटीका और भाषाटीका सहित इसे तैयार किया है ।

यह ग्रन्थ सर्वसाधारणकी समझमें सरलतासे आसके और इसका असली आशय स्पष्टरूपसे विदित होसके इसलिये इसमें कईप्रकारके उदाहरण, उपदेश, चक्र, अन्वयांक और टिप्पणी आदि संयुक्तकरके इसको सर्वांगसुन्दर बनानेकी पूरी चेष्टाकी है ।

भगवान् बम्बईके " श्रीवेंकटेश्वर " प्रेसके अध्यक्ष श्रीमान् सेठ खेमराजजीके भाग्यभास्करको उदित रक्लें । आपने भारतीय ग्रन्थरत्नोंके अस्तित्वकी रक्षाके निमित्त मुक्तहस्त धनव्यय करनेमें बड़ा प्रण किया है । समस्तार जैसे अमोघ ग्रन्थरत्नोंका सम्प्राप्त होना आपहीके सद्दिचारका फल है ।

यदि विद्वान् लोग स्थिरतासे इसका आयोजन अवलोकन और अनुशीलन करेंगे तो देश और ग्रन्थका बड़ा उद्धार होनेके साथही इसके तैयार करनेमें मुझे जो आयोजन और परिश्रम कानापड़ा है वह सफल होसकता है । आशा है कि, विद्वान् लोग इस ओर अवश्य ध्यान देंगे और इसमें भ्रम या दृष्टिदोषसे कहीं कुछ भूल हुई हो तो उसकी समा करैंगे ।

मैं इस ग्रन्थका सर्वाधिकार सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष " श्रीविंकेटेश्वर " स्टीम् प्रेस बम्बईको सादर समर्पित करता हूँ और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहय न करें नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पड़ेगी ।

शुभेच्छुक-हनूमान् शर्मा,
जयपुरं-सिटी.



समरसारकी-विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मङ्गलाचरण	१	दिशास्वर चक्र	३५
श्रीमहादेवही स्वरशास्त्रको पूर्णतया जानते है	२	राशिस्वर चक्र	३७
स्वर शास्त्रज्ञराजा अकेलाभी करोड़ों शत्रुओंका तारतकता है	३	रविहतदिशा	११
अनधिकारीको स्वरशास्त्र नहीं घताना	"	रविहतरिचक्र	३८
अधिकारी शिष्यको स्वरशास्त्र घतानेके लाभ	४	चन्द्रहत विदिशा और उनके स्वामी चन्द्रहतदिचक्र	३९
जयपराजय चक्रोपक्रम -	"	गूढाख्यकेतुहत दिग्विदिशा	४०
जयपराजयचक्र-	८	गूढचक्र	४१
जयपराजयका दूसरा चक्र	१०-१३	सूर्य और चन्द्रमाके पृष्ठ दिशा-दिमें होनेसे जय और पराजय	११
कुल अकुल-कुलाकुल गण	"	नाशुबल-राहुबल	४३
कुलाकुलादि चक्र	१५	राहुचक्र	४५
घर्णस्वर	"	योगिनीघन	११
घर्णस्वर चक्र	२०	योगिनीवास चक्र	४७
दूसरा	२१	योगिनियोंके नाम	११
अक्षरादि अक्षरोंके ग्रहराशि-स्थामी आदि और उदय	"	राहुभुक्त योगिनियोंका बल	४७
ग्रहराशिनवांशादिकका स्वरचक्र	२३	रविभादिवारोंमें वर्जनीय कालार्थ	११
द्वादशाब्दादि पञ्चस्वर	२४	ग्रहार्थ	"
द्वादशाब्दादिकस्वर चक्र	२८	अर्धयामकालचक्र	४९
मात्रा स्वरादि	२९	रात्रि चारोंमें अर्धयामका भोग	५०
योगस्वर घर्णस्वरोंका विशेष फल	३१	कक्रभदिरिचक्र	५१
युद्ध भावमें योधायोंका जय पराजय साम्य ज्ञान	३३	युद्धमें लड़नेयोग्य होरा	११
जय पराजय चक्र	"	वारप्रतिज्ञानकी रीति	५२
बाह्यकुमार श्यामिस्वरके वशासे भूबल	३४	विरुद्धयाम गूढराहुरवि आदिमें युद्ध करनेपर ग्रहणके स्थल	५३
		ग्रहोंकी स्थितिसे ग्रहणके स्थल	५४
		युद्धमें अहि चक्रविद्वद्धापाग्यनसब	५७
		वार दिग्गुल	५८
		नक्षत्रोंका जयने ३ भोग किये-	

(८)

विषयानुक्रमिका ।

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक.
जाते नक्षत्रमें अश्विनीआदि		मदनयुद्ध	८८
२७ नक्षत्रोंका अन्तर भोग	६०	जूपकेलिये स्वरवल	११
चंद्रसूर्याधिष्ठितनक्षत्रांतभागचक्र	६३	औषधादिको मुखमें रखकर युद्ध	
ग्राहकालानलचक्र	६४	करनेमें युद्धमें जय	८९
अवकहड चक्र	६६	युद्धमें जयके लिये कोटचक्र	९३
हंसचारोक्तिपूर्वक स्वरवलज्ञान	७०	कोटचक्रके चित्र	९७-९८
पृथ्व्यादि तत्त्ववहन फल	७६	कूर सौम्यग्रहोंकी स्थितिसे दुर्ग-	
हृत्कमलपत्रमें रविचन्द्रवहन-		भंग और रक्षादि	९९
पूर्वक प्राणवायुके संचारमें		कोटचक्रके स्वरूप	१००
अर्धधृत्वादिज्ञान	७७	मर्वतोभद्र चक्र	११०
चन्द्रस्वर ज्ञान चक्र	७८	वक्रशीघ्रग्रह वेध	११४
रविआदिनाडीके स्वरमें युद्धके		ऋणधनशोधन	११९
आरंभहोनेमें जय	८२	ऋणधनसाधनचक्र	१२०
रवि आदिनाडीके स्वरमें प्रश्नविशेष	११	आतुर साध्यामाध्यज्ञानचक्र	१२३
सूर्यचन्द्रनाडीके चलनेमें वर्तव्य	८५	छायापुरुषदेखनेका प्रकार	१२३
रविनाडीवहनमें वियोंका द्राघण	११	दूतरे शकुन	१२५
वशीकरण	८७	ग्रन्थकी समाप्ति	१२७

इत्यनुक्रमिका ।



श्रीः ।

ॐ अथ समरसारम् ॐ

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् ।

नत्वां गुरुन्समालोक्यं स्वरशास्त्राणि भूरिशः ।
वक्ष्ये युद्धजयोपायं धार्मिकाणां महीक्षिताम् ॥१॥

नत्वा भक्त्या महेशानं सर्वसिद्धिविधायकम् ।

व्याख्या समरसारस्य संग्रहाख्या प्रकाश्यते ॥ १ ॥

टीका समरसारस्य रामेण भरतेन च ॥

याऽकारि तत्संग्रहोऽत्र यथायोगं विधियते ॥ २ ॥

(संस्कृतटीका) अहं रामो वाजपेयी धार्मिकाणां धर्मा-
त्मनां महीक्षितां भूपानां युद्धजयोपायं वक्ष्ये कथयिष्ये । किं
कृत्वा गुरुन्नत्वा नमस्कृत्य । पुनः किं कृत्वा भूरिशः बहुशः
बहूनि स्वरशास्त्राणि समालोक्य सम्यग्विचार्य, युद्धे जयः युद्ध-
जयः युद्धजयस्योपायः युद्धजयोपायः तं युद्धजयोपायम्, स्वर-
शास्त्राणि स्वरग्रन्थान् पूर्वाचार्यकृतान् । गृणन्ति हितमुपदिश-
न्तिते गुरवस्तान्गुरुन् ॥ १ ॥

(भाषाटीका) गुरुओंको नमस्कार करके बहुतसे स्वरशास्त्रोंको
भले प्रकार देखकर धार्मिक राजाओंके युद्धमें जय होनेका उपाय
कहता हूँ ॥ १ ॥

बहुधा विदधे सदाशिवोऽत्र स्वरशास्त्राणि तदेकवा-
क्यतां तु । भगवानयमेव वेदं संम्यग्गुरुमार्गानु-
गतोऽपरस्तु लोकैः ॥ २ ॥

सदाशिवः महादेवः अत्र युद्धजयोपायनिमित्तं बहुप्रकारं
बहूनि च स्वरशास्त्राणि स्वरग्रन्थान् विदधे चकार कृतवान् ।
अयमेव भगवान् सदाशिवः तदेकवाक्यतां तेषां ग्रन्थानां
स्वरशास्त्राणाम् एकवाक्यताम् एकमत्यं वेद जानाति । अप-
रोस्मदादिर्लोकः अल्पबुद्धिः गुरुमार्गानुगतः गुरुपदिष्टं मार्गम्
अनुगतो भवति गुरुपदिष्टमार्गानुसारी भवति गुरुपदिष्टमेव
जानाति न त्वन्यत् ॥ २ ॥

यहाँ सदाशिवने बहुत स्वरशास्त्रोंका विधान किया है और वही
शिवभगवान् उनकी एकवाक्यताको भी भलेप्रकार जानते हैं ।
चाकी हमलोग तो गुरुमार्गानुगत हैं अर्थात् गुरुसे शिष्य और शिष्यसे
प्रशिष्य जानते हैं ॥ २ ॥

वक्ष्याम्येहं यदिहं किंचन सर्वसारंमेतावदेवं परि-
चिन्त्यं नृपः प्रवृत्तः । एकोपि कोटिभटलोलपतङ्ग-
दीपलीलां मुदानुभवतु स्फुटकौतुकेन ॥ ३ ॥

अहम् आचार्यः इह अस्मिन् ग्रन्थे यत्किञ्चन सर्वसारं
सर्वेषां ग्रन्थानां सारं सारभूतं वक्ष्यामि कथयिष्यामि एता-
वदेव सम्पक् परिचिन्त्य विचार्य योद्धुं प्रवृत्तः चलितः
एकोपि नृपःकोटिभटलोलपतंगदीपलीलां मुदा आनन्देन स्फुट-
कौतुकेन प्रत्यक्षकौतुकेन अनुभवतु अनुभवं करोतु । कोटिभटा-

स्त एव लोलाः चंचलाः पतंगा दीपे पतनशीलास्तेषां लीलाम्
अनुभवतु । कोर्थः यया पतंगा ज्वलद्दीपोपरि दूरतः समागत्य
निपतन्ति तथा अग्निप्रायम् एकं राजानम् उपरि बहवःशूराः
शत्रवः सन्निपत्य पतंगवद्भस्मीभवन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

हम यहाँ जो कुछ सर्वसार कहते हैं केवल उसीको चिन्तन करके
राजा युद्धमें प्रवृत्त हो तो जैसे दीपकके ऊपर अगणित पतंग अपने
आप पडकर भस्म होजाते हैं और दीपक तमाशा देखता रहता
है वैसेही, वह अकेला राजा भी करोड़ों चंचल योद्धाओंके बीच खड़ा
रहकर उस दीपककी लीलाके आनन्दका अनुभव करसकता है अर्थात्
उसपर करोड़ों योद्धा टूटपडें तभी वही जीत सकता है ॥ ३ ॥

नै तद्देयं दुर्विनीताय जातुं ज्ञानं गुप्तं तद्धिं सम्यक्फे-
लाय । अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वांचां देवी कोपा-
निर्दहे^१त्रो चिराय ॥ ४ ॥

एतत्स्वरज्ञानं दुर्विनीताय दुष्टाय शिष्याय जातु कदा-
चिन्न देयम् । तनु ज्ञानं गुप्तं कृतं सत् सम्यक् फलाय भवेत्
सम्यक्फलतीत्यर्थः । अस्थाने दुष्टे शिष्ये स्थाप्यमाना दीय-
माना वाचां देवी सरस्वती कोपात् क्रोधात् निर्दहेद्रुष्टं शिष्यं
भस्मीकुर्ष्यान्नो चिराय नो विलम्बेन शीघ्रमेव तं भस्मी-
कुर्ष्यात् ॥ ४ ॥

इस स्वरज्ञानको दुष्टशिष्यको कदापि न देना चाहिये । और
इसको अच्छे फलके वास्ते गुप्त रखना चाहिये । यदि अपात्रको
दे दिया जाय तो वह सरस्वती देवीके कोपसे बिना विरम्ब भस्म
होजाता है ॥ ४ ॥

विनयावनताय दीयमानां प्रभवेत्कल्पलतेर्व सत्फ-
लायै । उपकृत्यनुचिन्त्यकानि शास्त्राण्युपकारस्य
पदं हि साधुरेव ॥ ५ ॥

विद्याविनीताय नताय विनयनप्राय शिष्याय दीयमाना
कल्पलतेव कल्पवृक्षलतेव सत्फलाय उत्तमफलाय भवेत् समर्था
स्यात् । कुतः यतः शास्त्राणि उपकृत्यनुचिन्त्यकानि भवन्ति
उपकृत्यानुचिन्त्ययन्ति तानि उपकृत्यनुचिन्त्यकानि । उप-
कारस्य पदं स्थानं साधुरेव भवेन्नान्यः । तस्मात् साधुरेव
उपकारः कर्तव्यः न दुष्टस्य । दुष्टस्योपकाराद्वैपरीत्यं
भवति ॥ ५ ॥

विनयसे लुके हुए शिष्यको देनेसे अच्छे फलके वास्ते कल्पलताकी
तरह बढ़ता है । क्योंकि चिन्तन करने योग्य शास्त्रोंका उपकार
करनाही उचित है । और उपकारके योग्य साधु ही होते है ॥ ५ ॥

जयपराजयचक्रमाह १.

शं ५ मे ५ गं ३ गा ३ग ३ ति ६ स्ते ६द८ह८द८धि
९ तदधैः सर्गपण्डान्विज्ञाचैःकार्याख्यालीर्ष्वृते ङज-
र्मपि सुभंठयोर्नामवर्णोत्थसंख्ये । खं २ त्तेशेपेप्यशेपे
विजयपरिभैवो दा ८ त्तिशेपे न० व४ स्ते ६मा५मा
७ ली ३ का १ रि २जेता क्रमत इहै मतोऽश्योऽश्यं
इत्युक्तैमाद्यैः ॥ ६ ॥

“ कादयोका ९ ष्टादयोकाः ९ पादयः पंच ६ कीर्तिताः । यादयोऽष्टौ ८ तथा प्राज्ञैर्गणकैर्बुद्धिमत्तरैः”

कादयः अंका नवसंख्यका ज्ञेयाः तथा च क१-ख२-ग३ घ४-ङ५-च६-छ७-ज ८ झ ९ । टादयो नव ज्ञेयाः । ट१-ठ२-ड३-ढ४-ण५-त६-थ७-द८-ध ९ । तथा पादयः पंच ज्ञेयाः प१-फ२-ब३-भ४-म५- । तथा याद-योऽष्टौ ज्ञेयाः य१-र२-ल३-व४-श५-ष६-स७-ह ८ एवं अक्षरैः अंकाः बुद्धिमद्भिः अस्मिन्ग्रन्थे ज्ञेयाः सर्वत्र । अन्यत्रापि “ कटपयवर्गेनवनवपञ्चाष्ट, न-ञ-ज्ञाः शून्यबोधकाः इति । ” अन्यत्रापि-“ कादिर्नवाङ्का नवटादिरङ्काः पादिशशरा यादि भवन्ति चाष्टौ”-ने ज्ञे शून्ये स्वराश्च शून्याः । इति ।

शम्भेगंगा इत्यादीनाम् अंकानाम् अधः-सर्गो विसर्गः अः । ‘चत्वारश्च नपुंसकाः’ इति वचनात् षण्ढा ऋ ॠ लृ लृ एतान्विना त्यक्त्वा, अन्यान् (स्वरान् अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं) एतान् तदधस्तेषाम् अंकानामधः एकाद-शेषु कोष्ठेषु तिर्यक् लिखेत् । पुनरुयालीषु तिसृषु पंक्तिषु तदधः कायान् ककारः आयः येषां ते कायाः वर्णाः ङकार-अकारवर्जिताः हकारान्ताश्च ताँहिखेत् । सुभटयोः शोभन-भटयोः शोभनशूरयोः नाम्नि ये वर्णाः स्वराश्च भवन्ति तेषाम् अंकाः एकीकर्तव्या । एवं द्वयोः अंकान् पृथक् पृथक् एकी-

रूप्य खेन द्वाभ्यां भजेत् । यस्मिन्नेकशेषो भवति तस्य विजयः । यत्र शून्यं तत्र पराजयः ।

पुनस्त एवांकाः पृथक् पृथक् स्थाप्याः दभक्ता अष्ट-
भक्ताः भक्ते सति शेषांकाः यदि एते भवन्ति । एते के-
' न० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ ली ३ का १ रि २ ' एषाम्
अंकानां मध्ये यस्य योधस्य अंकः अग्र्यः अग्रिमः भवति
तस्याग्रे च जेता यस्याग्रे यः स जेता । एवमग्रेपि ज्ञेयम् ।
इति आद्यैः षण्डितैः उक्तम् ॥ ६ ॥

बारह आडी और सात ऊभी रेखा खींचकर प्रथम पंक्तिके ग्यारह कोठोंमें ' शं ५ मे ५ ' ३ गा ३ ग ३ ति ६ स्ते ६ द ८ ह ८ द ८ धि ९, यह लिखें । और इन अंकोंके नीचे सर्व (विसर्ग) और षण्ड (ऋऌलृ) बिना अचू (अआईईउऊएऐओऔं) स्थापन करें और उनके नीचेकी पंक्तिमें ' ङ अ ' बिना क ख ग आदिको लिखें तो " जयपराजयचक्र " बनजाता है । यह चक्र नीचे स्पष्ट लिखा है । इस चक्रमें योद्धाओंके नामके अक्षरोंसे उठी हुई संख्यामें दोका भाग देनेसे यदि शेष रहै तो विजय और अशेष (०) रहे तो पराजय होता है ।

यदि उसी संख्यामें आठका भाग दे और ' न० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ ली ३ का १ रि २ ' इनमेंसे कोई अंक बचे तो जिससे जिसका आगे हो उसीका विजय होता है, ऐसा पूर्वाचार्योंने कहा है ।

उदाहरण ।

ग्रंथका आशय अच्छीतरह समझमें आनेके लिये उदाहरण देना होता है । किन्तु उदाहरणके पहले ग्रन्थकारके पारिभाषिक-

संख्यांक आदि विदित करना अत्यावश्यक है । क्योंकि मार्गभेद जान-लेनेसे गतिमें भ्रम या रुकावट नहीं होता है ।

प्रायः ज्योतिषग्रन्थोंके गणितमें एक-दो-तीन-आदि संख्यावाची अंकोंमें एकाद्विऽयादि अथवा भूभुजभुवानादि शब्द व्यवहृत किये जाते हैं । किन्तु समरसारकारने गोप्य और लाघवके लिये कटपयन्त्रम रचकर [क १-ख २-ग ३-घ ४-ङ ५-च ६-छ ७-ज ८-झ ९ । ट १-ठ २-ड ३-ढ ४-ण ५-त ६-थ ७-द ८-ध ९ । प १-फ २-ब ३-भ ४-म ५- । य १-र २-ल ३-व ४-श ५-ष ६-स ७-ह ८] इन अंकोंसे एक दो तीन चार आदि संख्याके अंक लिये हैं । और जहाँ ९ से ऊपर ' दश, चारह, बीस या सौ दोसी, हजार आदि' अधिक संख्या लिखनेका प्रयोजन पडा है वहाँभी ' अंकानां वामतो गतिः ' मानकर इन्हीं अंकोंसे संख्यात्मक अंक लिये हैं । यथा-न० ट १ से १०-र २ थ ७ से ७२-घ ४ र २ ठ २ से २२४-और लं ३ बो ४ द ८ र २ से २८४ इत्यादि । इनके अतिरिक्त संख्यावाची और अक्षर यथास्थान पर चक्रोंमें दिये गये हैं । स्मरण रखनेकी बात है कि, चक्रोंसे अंक लेते समय प्रकरणके अनुसार वर्ण और मात्रा दोनोंके संख्यावाची अंक लिये जाते हैं । वस अब इसका उदाहरण देते हैं । "

ऊपर जो लिखा गया है कि, योद्धाओंके नामके अक्षरोंसे उठी हुई संख्यामें २ का भाग दे तो यहाँ इसके अनुसार राम और रावण इनका जय पराजय देखनेके लिये " राम " नाममें रेफ, आकार मकार, अकार यह चार अंक हैं । चक्रमें इन अंकोंके ऊपर गं ३-मे ५-शं ५ शं ५ यह अंक हैं । अतः इन सबको जोड़नेसे अठारह होते हैं । ऐसीही रावण " नाममें-रेफ, आकार, वफार, अकार, णकार, अकार यह छः अंक हैं । और चक्रमें इन अंकोंके ऊपर ' गं ३-मे ५-गं ३-शं ५-में ५-शं ५ ' यह अंक हैं अतः इन सबको जोड़नेसे

(८)

समरसारं—

छब्बीस होते हैं। इन १८ और २६ में पृथक् पृथक् ख अर्थात् दोका भाग देनेसे दोनोंमेंही शेष नहीं बचता है। अतएव राम और रावणकी साम्यता आती है। (कदाचित् इस उदाहरणसे कोई यह सन्देह करे कि रामरावणमें तो रामका विजय हुआथा। यहां साम्यता क्यों हुई। इसलिये सूचित करना पडता है कि यह साम्यता अनुचित न होनेपर भी आगे चक्रांतरसे रामकाही जय आता है।

जयपराजय चक्रम् १.

शं ५	मे ५	गं ३	गा ३	ग ३	ति ६	स्ते ६	द ८	ह ८	द ८	धि ९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०
न ०	व ४	स्ते ६	मा ५	सा ७	लि ३	रि २	का १	•	०	०

दासे शेषे० इसके अनुसार दोनोंका जयपराजय जाननेके लिये पहलेकी भांति राम रावणकी नामाक्षर संख्या १८। २६ में आठका भाग दिया तो २। २ शेष रहनेसे यहांभी साम्यताही है ॥ ६ ॥

पुनः जयपराजयचक्रमाह ।

अङ्कास्तुलारिभजतीधभुगानकाः स्यू रूपै १२ रं
तोऽक्षरमिती रहिते विधाय । तस्मात्पुनर्दं ८ हति-

शेषबहुत्वतः स्थानजैतौ स एव बल्पः सुधिया
विधेयः ॥ ७ ॥

‘तु ६ ला ३ रि २ भ ४ ज ८ ती ६ ध ९ भु ४ गा ३
न० का १’ एते अंका एकादशसु कोष्ठेषु तिर्यक् लेख्याः ।
पुनस्तदधः अकठम -आखणय -इगतर -ईघथल -उचदव-ऊछ
धश एजनप -ऐज्ञपस -ओटफह -औठव -अंडभ इति क्रमेण
वर्णा लेख्याः । पुनः द्वयोः अक्षराणां च स्वराणां च अंकान्
तुलारिभजतीत्यादिकान् विचार्य स्थानद्वये भिन्नं भिन्नं
लेख्यम् । पुनः रूपैः द्वादशभिः पृथक् पृथक् रहितं वर्जितं
विधाय कृत्वा । द ८ हतिशेषबहुत्वतः देन अष्टभिर्हरेत् हते
सति यस्यांकबाहुल्यम् अवशिष्टं भवति तस्य जयो भवति ।
यस्य स्मल्यांको भवति तस्य पराजयो भवति । सुधिया सुबु-
द्धिना राज्ञा युद्धादौ स एव बल्पः सेनापतिर्विधेय इति ॥ ७ ॥

तु ६-ला ३-रि २-भ ४-ज ८-ती ६-ध ९-भु ४-गा ३-
न०-का १- इन अंकोंको पहलेकी भांति ग्यारह कोठोंमें लिखकर
उनके नीचे पूर्वोक्त अच् आदि लिखै तो “ जयपराजय ” चक्र
बनजाता है । इन अंकोंसे दोनों योद्धाओंके नामाक्षरोंकी पृथक् पृथक्
संख्या आवे उसमें बारह घटावे और शेषमें आठका भाग दे तो
जिसका शेष बहुत हो उसीका जय होता है । अतएव सुन्दर बुद्धिशाला
राजा इसप्रकार विचार कर सेनापति नियत करे ॥ ७ ।

उदाहरण ।

जिस प्रकार पहले (शं ५-मे ५-गं २-गा-३) से अंक लिखे थे
उसी प्रकार यहाँ भी तुलारिभजतीसे राम-रावण-के अंक लिखे तो

र २- आ३- म६-, रामके १७ और २२- वा३- व८- अ६-ण
३- अ ६-, रावणके २८ आये । इनमें पृथक् पृथक् चारह घटाये तो
रामके ५-रावणके १६ बचे । फिर इन ५ । १६ में आठका भाग
दिया तो रामके ५ और रावणके ० रहे, अतएव यहाँ, श्रीरामचन्द्रकाही
जय प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

पुनः जयपराजय चक्रम ।

लु ६	ला ३	रि २	भ ४	ज ८	ती ६	ध ९	भु ४	गा ३	न ०	का १
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०

अथापरं जयपराजयचक्रमाह ।

वर्गाष्टकांकां दशतिघासकालारि^१ तद्युतौ^१ । नाम्नोः
सभाजितार्यां स्याद्विजयोऽधिकशेषके^१ ॥ ८ ॥

^१ 'अकचटतपयशाः' अष्टौ वर्गा अष्टसु कोष्ठेषु क्रमेण
लेख्याः कथं तदाह—प्रथमकोष्ठे अकाराद्याः षोडशस्वरा
। द्वितीयकोष्ठे कवर्गः (क ख ग घ ङ) तृतीय-

कोष्ठे चवर्गः (च छ ज झ ञ) चतुर्थकोष्ठे टवर्गः (ट ठ ड ढ ण) पंचमकोष्ठे तवर्गः (त थ द ध न) षष्ठे पवर्गः (प फ ब भ म) सप्तमे यवर्गः (य र ल व) अष्टमे शवर्गः (श ष स ह) एवम् अष्टानां वर्गाणां वर्णान् अधोलिखित्वा अष्टसुकोष्ठेषु, पुनस्तेषां कोष्ठानामुपरि ' द-श-ति-घा-स-का-ला-रि-र ' एते अंकाः क्रमेण लेख्याः । पुनः द्वयोर्योर्धयोर्नाम्नोः वर्णानां स्वराणां च अंकायुतिं पृथक् पृथक् विधाय कृत्वा सेन सप्त-भिर्हरेत् । यस्य नाम्नि अधिकांशोपस्तिष्ठति तस्य विजयः यस्य न्यूनांकस्तस्य पराजय इति ॥ ८ ॥

' द-श-ति-घा-स-का-ला-रि ' इन अंकोंके नीचे अवर्गादि क्रमसे आठ वर्ग लिखें तो " जयपराजयचक्र " बनजाता है. इसमें भी पूर्ववत् दोनोंके नामाक्षरोंसे अंक लाकर पृथक् पृथक् सातका भाग दे तो जिसका शेष अधिक रहै उसीका जय होता है ॥ ८ ॥+

+ उपरोक्त शंभेगंगे-अंकास्तुलारि-वर्गाष्टकांका- जिते दो दोद्वन्द्वोंके जय पराजय विहित होनेका उल्लेख कियागया है किन्तु दो दो संख्या यायी, स्यायी, वादी प्रतिवादी और सत्तादिकोंमेंभी इसकी योजना होसकतीहै । किसी बातपर दो शास्त्री अन्दर-हैं इनमें कियका पक्ष रहेंगा, कुछ घरेलू झगडा लेकर दो मनुष्य वादी प्रतिवादी हुए हैं इनमें कौन जीतेंगा, किंगी सोमवरा दो मनुष्योंमें प्रण (शर्त) बदा है, इनमें किसकी लाभ होगा ? इत्यादि २ बातोंका इनसे समुचित निश्चय होसकता है । प्रतीतिके लिये तीन उदाहरण देते हैं । यथा-धर्मप्रदीपको निम्नस्थ या प्रदीप्त करनेके लिये मागध और यादव शास्त्रीमें शास्त्रार्थ चलरहाहै इनमें कियका पक्ष सत्यरहेंगा ? यह जाननेके लिये

उदाहरण ।

यथा ' राम-रावण ' के नामाक्षरोंकी संख्या लानेमें रामका रेफ सप्तमवर्गीय है और इसका अंक ला से ३ है । आकार प्रथमवर्गीय है इसका अंक दकारसे ८ है । मकार षष्ठवर्गीय है इसका अंक ककारसे १ है । अकारका पूर्ववत् ८ है । इसभाँति रामनाम संख्या २० है और रावणमें इसी प्रकार ' र ३-आ ८-व ३-अ ८-ण ४-अ ८- ' नाम संख्या ३४ इन दोनों २० । ३४ में सातका भाग दिया तो शेष ६ । ६ बचनेसे परस्परमें साम्यता आती है ॥ ८ ॥

—'शंभेगंगा' के अनुसार म-श्या घ-श्र-व-श्र' माधवकी संख्या २९ और 'य आ १ ९
 ६ ६ ६ ६ ३ ६
 दु-श्र घ-श्र' यादवकी संख्या २६ इन २९।२६ में २ का भागदियातो माधवका १
 ३ ६ ६ ६
 और यादवका ० इस शेषमें माधवका अधिक शेष रहनेसे इसीका पक्ष सत्य रहेगा ।
 दुकानके आय व्यय विषयपर गोपी और हरी मुकद्दमा कर रहे हैं इनमें कौन
 जीतेगा ? यह जाननेके लिये ' तुलारिभजती ' के अनुसार ' ग-ओ-प-ई-
 २ ३ ४ ४
 गोपीकी संख्या १३ ' ह-श्र-र-ई ' हरीकी संख्या १५-इन १३ । १५ में
 ३ ६ २ ४
 पृथक् २ बारह घटायें तो १ । ३ रहे इनमें आठका भाग दिया तो १ । ३ शेष रहनेसे
 हरीका शेष अधिक है अतएव हरी मुकद्दमा जीतेगा । वेगसे बहती हुई गंगामें इस तीरसे
 उस तीरपर शीघ्र तीरकर जानेके लिये कछिया और बछिया में सौ सौ रुबोषी शर्त
 चढ़ी है । इनमें किसको लाभ होगा ? यह जाननेके लिये ' चर्माष्टकांका ' के अनुसार
 ' क-श्र छ-द-य-आ ' बछियाकी संख्या ३८ और व-श्र छ-द-य-आ ' कछियाकी संख्या ३४
 ४ ८ ६ ८ ३ ८ १ ८ ६ ८ ३ ८
 इन ३८ । ३४ में ७ का भाग दिया तो ३।६ शेष रहनेसे बछिया शीघ्र तीरकर १००)
 पारितोषिक पावेगा । इन उदाहरणोंमें पृथक् २ चर्कोंसे जो अंक लिये हैं गो केवल दिवा-
 नेके लिये लिये हैं । पृथक् २ लेनेका कोई नियम नहीं है । किसीमें एक चक्रसे सय बातें
 देरी जासक्ती हैं ।

इति समरसारे जयपराजयचिन्ताप्रकरणम् ।

अपर जयपराजयचक्रम् ।							
द ८	श ५	ति ६	घा ४	स ७	का १	ला ३	रि २
अ आ इ ई	क	च	ट	त	प	य	श
उ ऊ ऋ ॠ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष
ल ल ए ऐ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
ओ औ अं	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
अः	ङ	ञ	ण	न	म	०	०

कुला-कुल-कुलाकुलगणमाह ।

मूलाद्राभिजिदम्बुपोडु दशमी षष्ठी द्वितीया बुधो
राज्ञोः सन्धिकरैः कुलाकुलगणैः स्थास्रोर्जयार्थं
कुलैः । मासारुयास्थितभानि शेषतिथयो युग्माः
कुजो भार्गवः सधो न्योऽकुलसंज्ञको विजयते
तस्मिन्प्रयातो ध्रुवम् ॥ ९ ॥

मूलम्, आर्द्रा, अभिजित्, अंबुपः, शतभिषा एतानि
उडूनि नक्षत्राणि, षष्ठी, द्वितीया, दशमी एताः तिथयः;
बुधवासरश्च कुलाकुलगणः; अयं योद्धुमिच्छतोर्द्वयोः राज्ञो-

भूपयोः सन्धिकर- प्रीतिकरः स्यात् । मासाख्यास्थितभानि
 चैत्रादिमासानाम् आख्या नामानि तैर्नामभिःस्थितानि भानि
 तानि कानि ? चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, श्रवणः, पूर्व-
 भाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरः, पुष्यः, मघा, पूर्वा
 फाल्गुनी एता मासाख्यास्थितभानि,—शेषतिथयो युग्माः
 चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, कुजः भौमवारः भार्गवः
 शुक्रवारः कुलगणः, अयं स्थास्योःस्थायिनः जयार्थं जयार्थी
 भवति । अन्यःशेषतिथिवारनक्षत्रसमूहः अकुलगणः । स कः ?
 प्रतिपत्, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी, पूर्णिमा,
 अमावस्या एताः तिथयः । रवि—चन्द्र—गुरु—शनयो वाराः ।
 भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा,
 धनिष्ठा, रेवती, उ. पा, उ. भा, उ. फा, अयं तिथिवार-
 नक्षत्रसमूहः अकुलगणः । अस्मिन् गणे प्रयातो यायी विजयते
 विजयं प्राप्नोति ॥ ९ ॥

मूल, आर्द्रा, अभिजित्, शतभिषा, यह नक्षत्र-दशमी, पृष्ठी,
 द्वितीया, यह तिथि और बुधवार-इनकी “ कुलाकुल ” संज्ञा है । इनमें
 युद्धकी इच्छा करनेवाले राजाओंके परस्परमें सन्धि होजाती है । और
 महानोंके नामवाले—चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, श्रवण, पूर्वाभा-
 द्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा और पूर्वाफाल्गुनी
 नक्षत्र,—तथा शेषयुग्म-चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, तिथि-
 और मंगल, शुक्र वार इनकी “ कुल ” संज्ञा है । इसमें स्थार्द्र
 (जिसपर दूसरेने चढ़ाई की है और वह अपने राज्यमें बैठा है
 उस) राजाका जय होता है, और अन्यसंघ-भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु,

आश्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, उत्तराषाढ, उत्तरा-
भाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी-प्रतिपदा, तृतीया, पंचमी मप्तमी, नवमी,
एकादशी, पूर्णिमा और अमावास्या-सूर्य, चन्द्र, गुरु, शनि इनकी
“ अकुल ” संज्ञा है । इसमें युद्धारम्भ हो तो यायो राजाका निश्चय
विजय होता है ॥ ९ ॥

कुला-ऽकुल-कुलाकुलगणचक्रम् ।

मृ. आ. ऽभि. श -२। १०। ६।-बुध.	कुलाकुलगणः	सन्धिः
चि वि. ज्ये पूषा. श्र. पू. भा. अश्वि. कृ. मृ. पुष्य. म एका.-४। ८। १२। १४ मं. शु	कुलगणः	स्थावि- जयः
म. रो. पु. ऽश्ले उफा ह स्वा. ऽनु. उषा. धं उभा रे. १। ३। ५। ७। ९। ११। १३। १५। ३०। सू. चं. वृ. श.	अकुलगणः	यावि- जयः

सकलस्वरशिरोमणिं वर्णस्वरमाह ।

पञ्चोण्डेस्वराः कच्छडधभवमुखेष्वाङ्गणजव्यञ्जनेषु
स्युर्नन्दोदेस्तिथेस्ते तिथिकपिलवतोप्यन्तराभोग-
भाजं । नाम्नो^१ बालःकुमारो युवसजरमृता^२स्त्वादि
वर्णोत्स्वरास्ते^३ सिद्धयुत्कर्षो युवान्तो^४ ऽपचर्यैहत-
रयोयुद्धैचतां^५ द्विणमृताचिं^६ ॥ १० ॥

पञ्चाण्डेस्वराः अण्-एङ्-प्रत्याहारान्तभूताः ये स्वरा
अ इ उ-अण्-प्रत्याहारः ए ओ इि एङ्-प्रत्याहारः एवम्

सर्वसिद्धिं युवा दत्ते यात्रायुद्धे विशेषतः ॥ ३ ॥ दानं देवार्चने
 दीक्षागूढमंत्रप्रकल्पने । वृद्धस्वरो भवेद्भव्यो रणे भङ्गो भयं गमे ॥
 ॥ ४ ॥ विवाहादि शुभं सर्वं संग्रामाद्यशुभं तथा । न कर्तव्यं
 नृभिः किञ्चिज्जाते मृत्युः स्वरोदये ॥ ५ ॥ मृतो वृद्धस्तथा
 बालः कुमारस्तरुणः स्वरः । यथोत्तरबलाः सर्वे ज्ञातव्याः
 स्वरवेदिभिः ॥ ६ ॥” इति । यत्र नन्दादितिथीनां कपिलवो
 यल्लिखितस्तत्पष्टिघटिकात्मकतिथिभोगेन न्यूनाधिके तु त्रैरा-
 शिकमूह्यमिति ॥ १० ॥

अ-इ-उ-ए-ओ-’ यह पांचोस्वर ङ-ण-ञ-घिनाक-छ ङ-घ-भ-व
 प्रमुख वर्णोंके स्वर हैं । अर्थात् ‘कछङघभव’इन अक्षरोंका अ-स्वरहै ।

(१) अ इ उ ए ओ—यह पांचो स्वर सर्वत्र व्याप्त हैं । अतएव केवल इन्हीं
 पांचोके सम्यग् ज्ञानसे मनुष्य सर्व शुभाशुभ कथनमें समर्थ होसकता है । अपना प्रयोजन
 साधनेवालोंको उचित है कि जो कार्य देव, तत्त्व, शक्ति और गंध आदि जिस किसी
 सम्यग्धी हो उसको उसी देव, शक्ति, गन्धादिके उदयस्वरोंमें करे तो कार्यकी सिद्धि
 होसकती है । यथा—ब्रह्मासम्यग्धी प्रयोगादि ‘अ’ में, विष्णुसम्यग्धी ‘इ’ में, रुद्र-
 सम्यग्धी ‘उ’ में सूर्यसम्यग्धी ‘ए’ में और चन्द्रसम्यग्धी ‘ओ’ में करनेसे सिद्धि
 होती है । ऐसेही ‘अ’ में इच्छा, ‘इ’ में ज्ञान, ‘उ’ में प्रभा, ‘ए’ में श्रद्धा,
 और ‘ओ’ में मेधा यह शक्ति फलीभूत होती है । ‘अ’ में चौकोर, ‘इ’ में
 अर्द्ध, ‘उ’ में त्रिकोण, ‘ए’ में पट्टकोण, और ‘ओ’ में सर्तुलाकार चक्रमें
 पूजादिक उचित है । ‘अ’ के उदयमें पृथ्वीगत, ‘इ’ के उदयमें जलगत,
 ‘उ’ के उदयमें अग्निगत, ‘ए’ के उदयमें वायुगत और ‘ओ’ के उदयमें
 आकाश (ऊर्ध्व) गत प्रदत्त होते हैं । और ‘अ’ गन्ध, ‘इ’ रस,
 ‘उ’ रूप, ‘ए’ स्पर्श, और ‘ओ’ में शब्दविषयक प्रदत्त कहे जाते हैं ।

प्रकार अक्षरादि स्वरोंके उदयमें तत्सम्यग्धी प्रदत्तोंका शुभाशुभ कहना

वर्णस्वरचक्रम् ।

व	स्व	वाल	कुमार	सुधा	सुष्ट	मृत
क	अ	अ	उ	अ	अ	अ
ख	इ	इ	ए	अ	अ	अ
ग	उ	ए	अ	अ	अ	अ
घ	ए	अ	अ	अ	अ	अ
च	ओ	अ	इ	उ	ए	अ
छ	अ	इ	उ	ए	अ	अ
ज	इ	उ	ए	अ	अ	अ
झ	उ	ए	अ	अ	अ	अ
ट	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ठ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ड	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ढ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ण	अ	अ	अ	अ	अ	अ
त	अ	अ	अ	अ	अ	अ
थ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
द	अ	अ	अ	अ	अ	अ

इस चक्रसे सब वर्णों के बाल, कुमार, सुधा, सुष्ट, मृतवर
पृथक् २ स्पष्ट जानें जाते हैं ।

व	स्व	वाल	कुमार	सुधा	सुष्ट	मृत
ध	अ	अ	उ	अ	अ	अ
न	इ	इ	ए	अ	अ	अ
प	उ	ए	अ	अ	अ	अ
फ	ए	अ	अ	अ	अ	अ
ब	अ	अ	अ	अ	अ	अ
भ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
म	अ	अ	अ	अ	अ	अ
य	अ	अ	अ	अ	अ	अ
र	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ल	अ	अ	अ	अ	अ	अ
व	अ	अ	अ	अ	अ	अ
श	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ष	अ	अ	अ	अ	अ	अ
स	अ	अ	अ	अ	अ	अ
ह	अ	अ	अ	अ	अ	अ

अकारादीनां ग्रहराशिक्षेत्वं तत्तत्राशावदयं चाह ।

भौमेनयोर्ब्रह्मशिनोश्च गुरोर्भृगोस्ते क्षेत्रे शने-
रुदयिनोऽथं नैवांशकेऽजाते । भौरे २४ करे २१
तुं परितोत्तिमभादिसप्तस्वांदित्यर्तुंस्त्वउमुखौ अपि
पंचकेर्षु ॥ ११ ॥

पूर्वश्लोकेन वर्णस्वराः कथिताः । अनेन श्लोकेन ग्रहराशि-
क्षेत्रस्वराः प्रोच्यंताम् । भौमेनयोः भौमभास्करयोः क्षेत्रे राशौ

‘ए’ वृद्ध और ‘ओ’ मृत होती है। ऐसे ही ‘ख’ का ‘ई’ वाला ‘उ’ कुमार ‘ए’ युवा ‘ओ’ वृद्ध और ‘अ’ मृत होता है। इसी प्रकार सबसे जानना चाहिये (१)।

युवा स्वरके अन्त तक सिद्धिमें उत्कर्षता और वृद्ध, मृतमें अपचय होता है अर्थात् बालसे कुमार श्रेष्ठ और कुमारसे युवा अधिक श्रेष्ठ होता है और इनमें वृद्ध नेष्ट और वृद्धसे मृत अधिक नेष्ट होता है। यह जानना चाहिये। यदि अपना युवा और शत्रुका मृत स्वर जानके युद्धारम्भ किया जाय तो सिद्धि होता है ॥ १० ॥

वर्णस्वरचक्रमः ।				
बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	उ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
नन्दा १६।११	भद्रा २।७।१२	जया ४।८।१३	शक्ति ५।१४	पूर्णा ६।१०।१५

१. (१) जिस नामका जो स्वर हो वह बाल, दूसरा कुमार, तीसरा वृद्ध, चौथा वृद्ध और पांचवां मृत होता है। यथा—रामका ‘ए’ स्वर है अतः इनका ‘ए’ बाल, ‘ओ’ कुमार ‘अ’ युवा ‘इ’ वृद्ध और ‘उ’ मृत स्वर है। यह चक्रमें स्पष्ट दिखा है।

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । (२३)

उदयस्वर होतेहैं । एवं मेष राशिते चौबीस और बाकीके इक्कीस २ नवांशोंमें अ-इ-उ-ए-ओ नवांशेश होतेहैं । और रेवती आदि सातमें अ तथा पुनर्वसु आदि पांच २ में क्रमसे इ-उ-ए-ओ नक्षत्रस्वर होते हैं । यह सब नीचेके चक्रमें स्पष्ट लिखे हैं ॥ ११ ॥

ग्रहराशिनाशनाक्षत्राणां स्वरचक्रम् ।

स्वराः	अ	इ	उ	ए	ओ
वाराः	भौम, सूर्य	बुध, चंद्र	शुक्र	शुक्र	शनि
राशयः	मेष, वृश्चिक, सिंह	कन्या, मिथुन कर्क	धनुर्मौन	वृष, तुला	मकर, कुम्भ
नवांशाः	मे. ९ वृ. ९ मिथुन ६	मि. ३ क. ९ सि. ९	कन्या ९ तु. ९ वृश्चि. ३	वृश्चिक ६ ध. ९ म ६	म ३ कुं. ५ मी. ९
नक्षत्राणि	देवत्यादि ७	पुनर्वसु आदि ५	उ. फा. दि. ५	अनुराधा दि ५	श्रवणादि ५

उदाहरण ।

ग्रहस्वर-“ देवदत्तका ” ग्रहस्वर क्या है ? यह जाननेके लिये देवोचाची रेवती इसके अनुषार रेवतीकी मीन राशि है और मीनका स्वामी वृहस्पति है अतः चक्रमें वृहस्पति उकारके नीचे होनेसे देवदत्तका ग्रहस्वर उकार है ।

राशिस्वर-नोयाथीयू ज्येष्ठाके अनुसार “ यज्ञदत्त ” की वृश्चिक राशि होती है और चक्रमें वृश्चिक राशि अकारके नीचे है अतः यज्ञदत्तका राशिस्वर अ है ।

मेपवृश्चिकसिंहेषु अकार उदयी भवति । ज्ञशशिनोः बुधचंद्रयोः क्षेत्रे मिथुन-कन्या-कर्क-राशिषु इकारस्योदयः । गुरोर्वृहस्पतेः धनुर्मीनयोः उकार उदयं प्राप्नोति । शृगोः शुक्रस्य क्षेत्रे तुला-वृषयोः एकारस्योदयः । शनेः क्षेत्रे मकरकुम्भयोः ओकार-स्योदयः । एतेषां राशीनां स्वामिनो ये ग्रहाः अकारादीनां स्वामिनो भवन्ति । एवं ग्रहराशिस्वराः प्रोक्ताः । अथ नवांशेशत्वमाह । अजान्मेपादारस्य भारे चतुर्विंशतिनवांशानां मध्ये मेपस्य नवांशाः वृषस्य नवांशाः मिथुनस्य पडंशास्तेषु यस्य जन्म भवति तस्याकारः स्वामी । परतः इकरादौ करे २ १ एकविंशतिनवांशा ज्ञेयाः । इकारे मिथुनस्य त्रयोंशाः, कर्कस्य नवांशाः, सिंहस्य नवांशाः उकारे कन्यायाः नवांशाः, तुलायाः नवांशाः, वृश्चिकस्य त्रयोंशाः । एकारे वृश्चिकस्य पडंशाः धनुषो नवांशाः मकरस्य पडंशाः । ओकारे मकरस्य त्रयोंशाः, कुंभस्य नवांशाः, मीनस्ये नवांशाः । एवम् अंशस्वराः प्रोक्ताः । अथ नक्षत्रस्वराः प्रोच्यंते । अन्तिमभादिसप्तसु रेवत्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु अकारः स्वामी । आदित्यतः पुनर्वसुतः इउमुखाः इकारोकाराद्याः । उक्तं च-पुनर्वसुतः पंचसु इकारः । उत्तराफाल्गुनीतः पंचसु उकारः । अनुराधातः पंचसु एकारः । श्रवणादिपंचसु ओकारः स्वामी । नक्षत्रस्वर इत्यर्थः ॥११॥

मंगल, सूर्य, बुध, चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रह
राशिके तथा इनकी राशियोंके अ इ उ ए ओ यह क्रमसे

मेपवृश्चिकसिंहेषु अकार उदयी भवति । ज्ञशशिनोः बुधचंद्रयोः
क्षेत्रे मिथुन-कन्या-कर्क-राशिषु इकारस्योदयः । गुरोर्वृहस्पतेः
धनुर्मीनयोः उकार उदयं प्राप्नोति । शृगोः शुक्रस्य क्षेत्रे तुला-
वृषयोः एकारस्योदयः । शनेः क्षेत्रे मकरकुम्भयोः ओकार-
स्योदयः । एतेषां राशीनां स्वामिनो ये ग्रहाः अकारादीनां
स्वामिनो भवन्ति । एवं ग्रहराशिस्वराः प्रोक्ताः । अथ
नवांशेशत्वमाह । अजान्मेपादारज्य भारे चतुर्विंशतिनवां-
शानां मध्ये मेपस्य नवांशाः वृषस्य नवांशाः मिथुनस्य षडंशा-
स्तेषु यस्य जन्म भवति तस्याकारः स्वामी । परतः इकरादौ
करे २१ एकविंशतिनवांशा ज्ञेयाः । इकारे मिथुनस्य त्रयोंशाः,
कर्कस्य नवांशाः, सिंहस्य नवांशाः उकारे कन्यायाः नवांशाः,
तुलायाः नवांशाः, वृश्चिकस्य त्रयोंशाः । एकारे वृश्चिकस्य
षडंशाः धनुषो नवांशाः मकरस्य षडंशाः । ओकारे मकरस्य
त्रयोंशाः, कुम्भस्य नवांशाः, मीनस्ये नवांशाः । एवम् अंशस्वराः
प्रोक्ताः । अथ नक्षत्रस्वराः प्रोच्यन्ते । अन्तिमभादिसप्तसु
रेवत्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु अकारः स्वामी । आदित्यतः पुनर्वसुतः
इउमुखाः इकारोकाराद्याः । उक्तं च-पुनर्वसुतः पंचसु इकारः ।
उत्तराफाल्गुनीतः पंचसु उकारः । अनुराधातः पंचसु एकारः ।
श्रवणादिपंचसु ओकारः स्वामी । नक्षत्रस्वर इत्यर्थः ॥११॥

मंगल, सूर्य, बुध, चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रह-
राके तथा इनकी राशियोंके अ इ उ ए ओ यह क्रमसे

नक्षत्रस्वर—गोशाशीशु शतभिषके अनुसार 'श्रीनिवास'
का शतभिषा नक्षत्र है और यह चक्रमें ओकारके नीचे है । अतः
श्रीनिवासका नक्षत्रस्वर ओ है ।

द्वादशाब्दादीन् पञ्चस्वराणामाह ।

रूपान्देष्ट्वथ हायनर्तुषु च ते तत्कार्यं भागान्तरा-
भुक्त्यात्रान्यऽपरेयने त्व इरिमौ कृष्णान्ययोः
पक्षयोः । राधे भाद्रपदे सहस्र्य इरिषापाठे नभस्यु-
र्मधौ पौषे थैरपिशुक उर्ज उदयी माघान्त्ययो-
रो स्तथी ॥ १२ ॥

अस्मिन् श्लोके द्वादशवार्षिकस्वर-वार्षिकस्वरा-ऽस्यनक्षत्र-
स्वर—ऋतुस्वर—मासस्वर—पक्षस्वरानाह—रूपाब्दाः द्वादशाब्दा-
स्तेषु रूपाब्देषु द्वादशसु वर्षेषु प्रभवादिषु अकार उदयी
भवति । प्रमाथ्यादिषु द्वादशवर्षेषु इकारः स्वामी । स्वरा-
दिद्वादशवत्सरेषु उकारः स्वामी । शोभानादिषु द्वादशवर्षेषु
एकारः स्वामी । राक्षासादिषु द्वादशवर्षेषु ओकारः स्वामी ।

येषु वत्सरेषु यस्य जन्म भवति तेषां संवत्सराणां यः स्वामी
भवति तं स्वरमारभ्य द्वादशाब्दिकस्वरो बालादिः ज्ञातव्यः ।
अथ वार्षिकस्वरमाह—प्रभवादिवर्षेषु अकाराद्या उदयं प्राप्नु-
वन्ति । प्रभववर्षे अकारः स्वामी, विभववर्षे इकारः स्वामी,
शुक्लवर्षे ओकारः स्वामी, प्रमोदवर्षे एकारः स्वामी, प्रजापतिवर्षे
ओकारः स्वामी, पुनः अंगिरसि वर्षे अकारः, श्रीमुखवर्षे इकारः,
उकारः, युवसंवत्सरे एकारः, धातृसम्बत्सरे ओकारः ।

एवम् ईश्वरादिवर्षेषु पंचसु अकाराद्याः । पुनः चित्रभान्वा-
दिपंचसु अकाराद्याः । हेमलम्बादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः ।
पुनः शुभकृदादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः पिंगलादिपंचसु
अकाराद्याः । पुनः दुंदुभ्यादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनः ।
एवं पंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनो भवन्ति । 'तत्काय-
भागान्तराभुक्त्या' तेषां कायभागः एकादशांशः स एवा-
न्तराभुक्तिः । अन्तरोदयाः द्वादशवार्षिकस्वरे अंतराभुक्त्या
अन्तरोदयेन स्वरा ज्ञातव्याः । तमेवान्तरमाह—एको वर्षः, एको
मासः, दिनद्वयम्, त्रयश्चत्वारिंशद्वट्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं
पुनर्द्वादशवारं स एव । एतावद्दिर्द्वादशवर्षरथ अस्वरे अन्तरोदयः ।
अथ वर्षस्वरे अन्तरोदयः—एको मासः, दिनद्वयं, त्रयश्चत्वा-
रिंशद्वट्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारम् एताव-
द्दिर्मासदिनवटीपलैः अन्तरोदयः स्यात् अथ ऋतुस्वरमाह—
वसन्तुमारभ्य द्विसप्ततिभिर्दिनैः एकैकस्य ऋतोरुदयः स्यात् ।
वसन्तर्तोः षष्टिदिनानि, ग्रीष्मर्तोः द्वादशदिनानि यावदकार-
स्योदयः । ग्रीष्मर्तोरष्टचत्वारिंशद्दिनानि वर्षर्तोश्चतुर्विंशति-
दिनानि यावदिकारस्योदयः । वर्षर्तोः षट्त्रिंशद्दिनानि, शरद्वर्तोः
षट्त्रिंशद्दिनानि यावदुकारस्योदयः । शरद्वर्तोश्चतुर्विंशतिदिनानि,
हेमन्तस्याष्टचत्वारिंशद्दिनानि यावदेकारस्योदयः । हेमन्तस्य
द्वादशदिनानि, शिशिरर्तोः षष्टिदिनानि यावदोकारस्योदयः ।
एवम् ऋतुस्वराः प्रोक्ताः । ऋतुस्वरमध्ये एकादशांशेनान्त-
रोदयः—दिनानि षट्, द्वात्रिंशद् घट्यः, त्रिचत्वारिंशत्पलानि,
अनेन प्रमाणेन एकादशान्तरोदयाः भवन्ति । अथायनस्वर-

नक्षत्रस्वर—गोशाशीशु शतभिषके अनुसार 'श्रीनिवास'
का शतभिषा नक्षत्र है और यह चक्रमें ओकारके नीचे है । अतः
श्रीनिवासका नक्षत्रस्वर ओ है ।

द्वादशाब्दादीन् पञ्चस्वराणामाह ।

रूपान्वेष्ट्वथ हायनर्त्तुपु च ते तत्कार्यं भागान्तरा-
भुक्त्यात्रोच्यऽपरेयने त्व इरिमौ कृष्णान्ययोः
पक्षयोः । राधे भाद्रपदे सहस्र्य इरिपापाठे नभस्यु-
र्मधौ पौषे थैरपिशुक्र उर्ज उदयी माघान्त्ययो-
रो स्तथा ॥ १२ ॥

अस्मिन् श्लोके द्वादशवार्षिकस्वर-वार्षिकस्वरा-ऽस्यनक्षत्र-
स्वर—ऋतुस्वर—मासस्वर—पक्षस्वरानाह—रूपाब्दाः द्वादशाब्दा-
स्तेषु रूपाब्देषु द्वादशसु वर्षेषु प्रभवादिषु अकार उदयी
भवति । प्रमाथ्यादिषु द्वादशवर्षेषु इकारः स्वामी । स्वरा-
दिद्वादशवत्सरेषु उकारः स्वामी । शोभानादिषु द्वादशवर्षेषु
एकारः स्वामी । राक्षासादिषु द्वादशवर्षेषु ओकारः स्वामी ।

येषु वत्सरेषु यस्य जन्म भवति तेषां संवत्सराणां यः स्वामी
भवति तं स्वरमारभ्य द्वादशाब्दिकस्वरो बालादिः ज्ञातव्यः ।
अथ वार्षिकस्वरमाह—प्रभवादिवर्षेषु अकाराद्या उदयं प्राप्तु-
वन्ति । प्रभववर्षे अकारः स्वामी, विभववर्षे इकारः स्वामी,
शुक्लवर्षे ओकारः स्वामी, प्रमोदवर्षे एकारः स्वामी, प्रजापतिवर्षे
ओकारः स्वामी, पुनः अंगिरसि वर्षे अकारः, श्रीमुखवर्षे इकारः,
भाववर्षे उकारः, युवसंवत्सरे एकारः, धातृसम्बत्सरे ओकारः ।

एवम् ईश्वरादिवर्षेषु पंचसु अकाराद्याः । पुनः चित्रभान्वा-
 दिपंचसु अकाराद्याः । हेमलम्बादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः ।
 पुनः शुभरुदादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः पिंगलादिपंचसु
 अकाराद्याः । पुनः दुंदुभ्यादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनः ।
 एवं पंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनो भवन्ति । 'तत्काय-
 भागान्तराभुक्त्या' तेषां कायभागः एकादशांशः स एवा-
 न्तराभुक्तिः । अन्तरोदयाः द्वादशवार्षिकस्वरे अन्तराभुक्त्या
 अन्तरोदयेन स्वरा ज्ञातव्याः । तमेवान्तरमाह—एको वर्षः, एको
 मासः, दिनद्वयम्, त्रयश्चत्वारिंशद्व्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं
 पुनर्द्वादशवारं स एव । एतावद्भिर्द्वादशवर्षस्य अस्वरे अन्तरोदयः ।
 अथ वर्षस्वरे अन्तरोदयः—एको मासः, दिनद्वयं, त्रयश्चत्वा-
 रिंशद्व्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारम् एताव-
 द्भिर्मासदिनघटीपलैः अन्तरोदयः स्यात् अथ ऋतुस्वरमाह—
 वसन्तुमारभ्य द्विसप्ततिभिर्दिनैः एकैकस्य ऋतोरुदयः स्यात् ।
 वसन्तर्तोः षष्टिदिनानि, ग्रीष्मर्तोः द्वादशदिनानि यावदका-
 रस्योदयः । ग्रीष्मर्तोरष्टचत्वारिंशद्दिनानि वर्षर्तोश्चतुर्विंशति-
 दिनानि यावदिकारस्योदयः । वर्षर्तोः षट्त्रिंशद्दिनानि, शरदतोः
 षट्त्रिंशद्दिनानि यावदुकारस्योदयः । शरदतोश्चतुर्विंशतिदिनानि,
 हेमन्तस्याष्टचत्वारिंशद्दिनानि यावदेकारस्योदयः । हेमन्तस्य
 द्वादशदिनानि, शिशिरर्तोः षष्टिदिनानि यावदोकारस्योदयः ।
 एवम् ऋतुस्वराः प्रोक्ताः । ऋतुस्वरमध्ये एकादशांशेनान्त-
 रोदयः—दिनानि षट्, द्वात्रिंशद् द्व्यः, त्रिचत्वारिंशत्पलानि,
 अनेन प्रमाणेन एकादशान्तरोदयाः भवन्ति । अथायनस्वर-

माह—अवाचि दक्षिणायने अपरे सौम्यायने तु अ—इ—इमौ
 स्वरौ भवतः । उक्तं च—दक्षिणायने अकारः स्वामी, उत्तरायणे
 इकारः स्वामी । अस्मिन्नयने स्वरे अन्तरोदयः—पोढश-
 दिनानि, एकविंशतिघट्यः, एकोनपञ्चाशत्पलानि । अथ
 पक्षस्वरमाह—इमौ अकारेकारंस्वरौ कृष्णान्ययोः पक्षयोः
 स्वामिनौ भवतः । उक्तं च—कृष्णपक्षे अकारस्योदयः शुक्लपक्षे
 इकारस्योदयः । अत्र पक्षस्वरे अन्तरोदयः एकं दिनम्,
 एकविंशतिघटिकाः, एकोनपञ्चाशत्पलानि, अनेन प्रमाणेन
 एकादशांतरोदया भवन्ति । अथ मासस्वरमाह—राधे वैशाखे,
 तथा भाद्रपदे, सहसि मार्गशीर्षे अकारः स्वामी इपे आश्विने,
 आपाढे, नभस्ये श्रावणे इकार उदयं प्राप्नोति । मघौ चैत्रे,
 पौषे च उकार उदयी भवति । अथानन्तरं शुक्ले ज्येष्ठे, ऊर्जे
 कार्तिके एकार उदयी भवति । माघः प्रसिद्धः अन्त्यः फाल्गुनः
 तयोः माघान्त्योः ओकार उदयं प्राप्नोति । अत्रापि मासस्वरे
 अन्तरोदयः पूर्ववज्ज्ञातव्यः, दिनद्वयं, त्रिचत्वारिंशद्घट्यः,
 अष्टात्रिंशत्पलानि । अनेन श्लोकेन द्वादशाब्दिकवार्षिकायन-
 ऋतुमासपक्षस्वराः सान्तरोदयाः कथिताः । दिनस्वरघटीस्वरौ
 'पंचाण्ड' इति श्लोकेन पूर्वमेव कथितौ ॥ १२ ॥

प्रभवादे चारह बारह सवत्सरोमें अ—इ—उ—ए—ओ यह क्रममे
 द्वादशवार्षिक स्वर होते हैं । और प्रत्तव विभव आदि प्रत्येक वर्षमें
 अ—इ आदि पांचों स्वर वार्षिक स्वर होते हैं । और वसन्त आदि
 षट् ऋतुओंमें इनके ३६० दिनोंके पंचमांश (बहत्तर दिन)
 प्रमाणसे अ—इ आदि पांचों स्वर ऋतुस्वर होते हैं । तथा इन

संस्कृतटीका—भाषाटीकासमेतम् । (२७)

द्वादशवार्षिक, वार्षिक और ऋतुस्वरोंके मध्यमें एकादशांश प्रमाणसे यही स्वर अन्तरस्वर होते हैं । (द्वादशवार्षिकका १ वर्ष, १ मास २ दिन ४३ घड़ी, ३८ पल एकादशांश होता है वार्षिकका १ मास, २ दिन, ४३ घड़ी, ४३ पल, एकादशांश होता है;—और+ऋतु स्वर का ६ दिन, ३२ घड़ी, ४३ पल, ३८ एकादशांश होता है । दक्षिणायनका अ और उत्तरायणका इ अयनस्वर होते हैं । एवं कृष्णपक्षका अ, और शुक्लपक्षका इ, यह पक्षस्वर होते हैं । और वैशाख, भाद्रपद, मार्गशोर्षका अ,—आषाढ आश्विन श्रावणका ई,—चैत्र पौषका उ; कार्तिक ज्येष्ठका ए; और माघ, फाल्गुनका ओ यह मासस्वर होते हैं । इनमें भी (अयनक. १६ दिन, २१ घड़ी, ४९ पल एकादशांश होता है, पक्षस्वरका १ दिन २१ घड़ी, ४९ पल एकादशांश होता है, और मासका २ दिन ४३ घड़ी ३८ पल एकादशांश होता है) ।

+ ऋतुगणना—सौरमान और चान्द्रमान दोनोंसे की जाती है, यथा सौरमानके अनुसार—“ मृगादिराशिद्वयभानुभोगः पदक ऋतुना शिशिरो वसन्तः । व्रीष्मथ वर्षाः शरदथ तद्द्वेद्वेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः ॥ १ ॥ ”—मृगादि दो दो राशियोंके भानुभोगसे शरदादि छः ऋतु होते हैं । यथा—मकर कुम्भके सूर्यमें शिशिर, मीन मेषमें वसन्त, वृष मिथुनमें ग्रीष्म, कर्क सिंहमें वर्षा, कन्या तुलामें शरद, और बुधिक पनमें हेमन्त ऋतु होती है । एव चान्द्रमानके अनुसार—“ मधुथ माघवथ वसन्ताग्रू । शुक्लथ जुचित्थ भ्रैष्मराग्रू । नभथ नभस्यथ वार्षिकाग्रू । इपचोर्जथ शरदाग्रू । सहस्र-सहस्यथ हेमन्तिकाग्रू । तपथ तपस्यथ शैशिराग्रू । इति ध्रुतो । ”—चैत्र वैशाखमें वसन्त, जेष्ठ आषाढमें ग्रीष्म, श्रावण भाद्रपदमें वर्षा, आश्विन कार्तिकमें शरद, मृगशिर पौषमें हेमन्त और माघ फाल्गुनमें शिशिर ऋतु होती है । “ धीतस्मार्तक्रिया सर्वाः कुर्याच्चन्द्रममर्तुः । तदभावे तु सौरुं ध्विति ज्योतिर्विदं मतम् ॥ १ ॥ ” धीत और स्मार्त कर्म चाद्र ऋतुमें और अन्य सौरऋतुमें करने चाहिये ऐसा ज्योतिषियोंका मत है । “ वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमसौरान्० ” इति सिद्धांतशिरोमणौ भास्कराचार्येणोक्तम् ॥ युगपूर्वक वर्ष, अयन और ऋतु यह यहाँ सौर मानने चाहिये । अतएव उपरोक्त उदाहरण सौरमानसे दिया गया है ।

मात्रास्वराद्याह ।

३

मात्रां नाममुखार्णजैव तु तदज्मंत्रादिसिद्धौ हलच्-
संख्यैक्यं तप संख्ययांश्चु भि यशोः काद्ये
मि जीवाणुभे । पिण्डाज्मंत्रिकवर्णिकैक्यमहते
शेषे चमूसत्कृतौ मात्राणग्रहपिण्डजीवभगृहाजै-
क्यान्म ह्यै द्यौर्गिकैः ॥ १३ ॥

मात्रास्वर-जीवस्वर-योगस्वर-पिण्डस्वरानाह । नाममुखा-
र्णजैव मात्रादयश्च ज्ञेयाः । नाममुखे नामदौ यः अर्णो वर्णस्त-
ज्जाता एतादृशी या मात्रा तदच् मात्रास्वर इत्यर्थः । सः
मात्रास्वरो मन्त्रादिसिद्धौ शुभः । मात्रास्वरबले मन्त्रादिसाधनं
कर्तव्यम् । तदुक्तम्—“ साधनं मन्त्रयन्त्रस्य तन्त्रयोगं च
सर्वदा । अधोमुखानि कार्याणि मात्रास्वरबले कुरु ” इति ।
जीवस्वरानयनार्थं—हलच्संख्यैक्यं कर्तव्यम्, अक्षु स्वरेषु
तपसंख्यया षोडशसंख्यया ग्राह्याः । यशोः यवर्गशवर्गयोः
भिसंख्या चतुस्रसंख्या ग्राह्याः । काद्ये वर्गे-कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-
तवर्ग-पवर्गेषु भिसंख्याः पंच पञ्च संख्या ग्राह्याः । नाम्नो ये
हलः अचश्च तेषां कथितक्रमेणागतसंख्यायामज्जलयोरैक्यं
जीवस्वरो भवति, स च शुभे मङ्गलकृत्ये ग्राह्यः । पंचाधिका
चेत् संख्या, तदा पंचभिर्भागोऽनुपदिष्टोऽपि कायः । भागे यः
शिष्टोऽकः तत्संख्य एवाकारादिषु पंचसु स्वरो ग्राह्यः । शून्य-

शेषे तु पंचमः ओकार एव ग्राह्यः । जीवस्वरफलं चोक्तं स्वरो-
दये—“खानपानादिकं सर्वं वध्नालङ्कारभूषणम् । विद्यारम्भं
विवाहं च कुर्याज्जीवस्वरोदये ।” इति । मात्रिकवर्णिकैक्यं-
मात्रिको मात्रास्वरः वर्णिको वर्णस्वरः, तत्संख्ययोरैक्यं म ५
द्वते शेषः’ स पिंडाच् पिण्डस्वरः भवतीति संबंधः । स च
सेनायाः सत्कृतौ सत्कारे सज्जीकरणे ग्राह्यः । उक्तं च-
“शत्रूणां देशभंगं च कीटयुद्धं च वेष्टनम् । सेनाध्यक्षस्तथा
मंत्री कर्तव्यः पिण्डकोदये ।” इति । यदा यस्य पिंडो युवा
स्वरो भवति तदा तस्य सेनाधिपत्यं दातव्यम् । यौगिकस्वर-
माह—मात्रार्णेति, मात्रास्वरवर्णस्वरौ प्रागुक्तौ, ग्रहस्वरस्तु
तन्नामराशिग्रहणसम्बन्धात्, पिण्डस्वरः प्रागुक्तः, जीवस्वरश्च-
भं जन्मनक्षत्रं, तदधिपस्वरः गृहं राशिस्तस्य च यः अच्
एषां मात्रादि—स्वराणां याः संख्यास्तासामैक्यं तत्पंचभिर्भक्तं
शिष्टो यौगिकः स्वरः । तत्फलं “योगेन साधयेद्योगं देहस्थं
ज्ञानसंभवम् । इति ।” ॥ १३ ॥

नामके आदिवर्णकी जो मात्रा हो वहीं मात्रास्वर होता है यह
मन्त्रादि साधनमें उपयोगी है । अ आ इ ई आदि स्वरोंकी संख्या
१६, कवर्गकी ५ चवर्गकी ५, टवर्गकी ५, तवर्गकी ५, पवर्गकी ५,
यवर्गकी ४ और शवर्गकी ४ इस प्रकार संख्या मानकर नामके स्वर
और व्यंजनकी संख्याका योग करनेसे जीवस्वर होता है । यदि
संख्या ५ से अधिक हो तो ५ का भाग देनेपर शेष ‘जीवस्वर’

संस्कृतटीका—भाषाटीकासमेतम् । (३१)

होता है । यह शुभ ऋषीमें अच्छा है । मात्रास्वर और वर्णस्वरकी संख्याके योगमें ५ का भाग देनेसे जो शेष रहै वह पिण्डस्वर होता है यह सेनाके सत्कार (स्वागत, सजावट, सेनापति आदि) में उपयोगी है और मात्रा, वर्णग्रह, पिण्ड, जीव, नक्षत्र और राशि इनके स्वर्णोंकी संख्याके योगमें ५ का भाग देनेसे जो शेष रहै वह, यौगिकस्वर होता है ॥ १३ ॥

उदाहरण ।

मात्रास्वर—रामके आदिवर्ण स्वरमें आ मात्रा होनेसे रामका अकार मात्रा स्वर है । जावस्वर—रामनाममें रेफ २ आकार २ मकार ५ अकार १ की संख्याके योग १० में ५ का भाग देनेसे शेष शून्य वचता है अतः रामका ओकार जितस्वर है । पिण्डस्वर रामका वर्णस्वर एकार चतुर्थ होनेसे ४ संख्या है । और मात्रास्वर अकार प्रथम होनेसे १ संख्या है । अतः इनके योग ५ में ५ का भाग दिया तो शेष शून्य रहनेसे रामका ओकार पिण्डस्वर है । यौगिकस्वर—राम का मात्रास्वर प्रथम होनेसे १ संख्या, वर्णस्वर एकार चतुर्थ होनेसे ४ संख्या ग्रहस्वर (रामकी तुला राशि होनेसे तुलाधिप शुक्रका) एकारकी ४ संख्या, पिण्डस्वर आकारकी ५ संख्या, जीवस्वर ओकारकी ५ संख्या नक्षत्रस्वर (रामके चित्रा नक्षत्रका) उकारकी ३ संख्या और राशिस्वर (तुलाराशि का एकारस्वर) की ४ संख्या, इस प्रकार मात्रा १ वर्ण, ४, ग्रह ४, पिण्ड ५, जीव ५ नक्षत्र ३, राशि ४ इन सबकी संख्याओंके योग २६ में ५ का भाग देनेसे शेष १ रहा अतएव रामका अकार यौगिकस्वर है ॥ १३ ॥

योगस्वरवर्णस्मरयोर्विशेषफलमाह ।

योगाच्चा योगभङ्गनं वर्णाच्चां सर्वमावहेत् ।

विशेषतश्च संग्रामे स हि सर्वस्वराग्रणीः ॥ १४ ॥

योगाचा—योगस्वरेण; योगस्वरवले संति योगभजनं योगसाधनं कर्तव्यम् । वर्णाचा—वर्णस्वरेण; वर्णस्वरवले संति सर्वकर्म आवहेत् कुर्यात् । विशेषतः संग्रामं कुर्यात् । यतः सर्वस्वराणां मध्ये अग्रणीमुख्यः । तस्माद्यदा वर्णस्वरो युवा भवति तदा सर्वकर्मसाधने अतीव शुभतरः ॥ १४ ॥

योगस्वरमें योगमार्ग साधन और वर्णस्वरमें सब कार्योंका साधन करना चाहिये । विशेषकरके संग्राम कटना चाहिये, क्योंकि यही सब स्वरोमें अग्रणी है ॥ १४ ॥

युद्धादौ भटादीनां जय-पराजय-साम्य-ज्ञानमाह ।

तेषामर्चां लयभरायमिति हलां च नाम्नोरर्लां तु मिलितां महतां पृथक्सा । हीना मृतिं विजयमाह तथाधिकां सा तुल्यां समं च समं यदि वापि संधिम् ॥ १५ ॥

तेषाम् अ इ उ ए ओ इति प्रागुक्तानां पंचानां स्वराणां तत्सम्बन्धिनी मितिः संख्या ल ३-य १-भ ४-रा २-य १ एवरूपा स्यात् । तेन अकलठधभवानां ल इति त्रिसंख्या । इखजठनमशानां य इति एका संख्या । उगज्ञतपयपाणां भ इति चतुःसंख्या । एघटथफरसानां रा इति द्विसंख्या । ओचठदबलहानां य इति १ संख्या भवति । नाम्नोर्यमोर्जयपराजयज्ञानमिष्टं तन्नाम्नोर्ये हलः स्वरा वर्णाश्च तेषां सम्बन्धिनी सा संख्या लयभरायेत्युक्ता प्रतिस्वरं मिलित्वा सर्ता पृथक्पंचभिर्हता च या स्यात्सा संख्या चेदितरापेक्षया हीना, तदा तन्मृतिं हीननाम्

संख्यस्य मरणमाह । इतरापेक्षयाधिका चेत्सा तदा विजयमाह । सा संख्येतरेतरं तुल्या समा चेतुल्यं समरं संग्राममाह । यदि वा पक्षांतरे सन्धि द्वयो राज्ञोर्हि । अत्र वर्णसंख्याग्रहणे निपिद्ध-वर्णानां ङकारणकारादीनां नाम्नि संभवे शून्यमेव ग्राह्यं न कदाचित्संख्या । इति ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त रीतिके अनुसार पांच कोठोंमें ल ३-य १-भ४-रा२-य१ यह अंक लिखकर इनके नीचे अ इ उ ए ओ और क ख ग घ च आदि वर्ण लिखें तो जयपराजय देखनेका चक्र बन जाता है । इस चक्रसे दोनों योद्धाओंके नामके स्वर और व्यंजनोंकी संख्या लेकर उसमें पृथक् पृथक् ५ का भाग दे तो जिसका शेष न्यून हो उसका पराजय और जिसका शेष अधिक हो उसका विजय होता है । यदि बराबर बचे तो समान युद्ध होता है । अथवा सन्धि हो जाती है ॥१५॥

उदाहरण ।

राम-रावण, नामोंमें र २-आ ३-म १-अ३- रामनाम संख्या ९ एवं र २-आ ३-व ३-अ३-ण० अ२- रावण नामसंख्या १४ इन ९-१४ में पृथक् पृथक् ५ का भाग दिया तो ४-४ शेष रहे अतएव युद्धमें साम्यता प्राप्त होती है ।

जयपराजयचक्रम्				
ल ३	य १	भ ५	रा २	य १
अ	इ	उ	उ	ओ
क छ ट	ख ज ढ	ग ङ त	घ ढ थ	च ठ द
ध भ व	न म श	प य ष	फ र स	ब ल ह

इति समरसारे स्वरभेदजयपराजयप्रकरणम् ।

बालकुमारादिस्वरवशाद्बलमाह ।

पूर्वादिदिक्ष्वन्तरगांश्च तेऽचः सुखं जयेद्युनि जयस्तु
घातात् । स्यादाद्ययोर्नान्तिमयोः स्वशत्रुबलाबला-
भ्यां भुवमादुदीत ॥ १६ ॥

तेऽचः अकाराद्याः स्वराः पूर्वादिदिक्षु अन्तः अन्तरिता
लेख्याः । एकां दिशं विहाय लेख्यास्तदेवाह । पूर्वस्यां दिशि
अकारः । दक्षिणस्यां दिशि इकारः । पश्चिमायां दिशि
उकारः । उत्तरस्यां दिशि एकारः । मध्ये ओकारः लेख्यः ।
यस्य योद्धुः वर्णस्वरो युवा यस्यां दिशि भवति संग्रामे तस्यां दिशि

ऐशानीतःसितकुजशानिरविखगराशयः प्रतीचीन्दोः ।
गुरुगृहयोरक्ष उदग्देशौज्ञगृहयोस्तु वायव्याम् ॥१७॥

रविचन्द्रहतिं विवक्षुस्तत्तद्गृहराशीनां दिग्विशेषे निवेश-
माह । ऐशानीतः ईशानकोणमारभ्य एते राशयो भवन्ति ।
कोर्ष्य-ईशानकोणे सितराशिः वृषस्तुला च बलिनौ भवतः ।
पूर्वस्यां दिशि भौमराशी मेपवृश्चिकौ बलिनौ भवतः । शनि-
राशी मकरकुम्भौ आग्नेय्यां बलिनौ भवतः । रविराशिः
सिंहो दक्षिणे च बली स्यात् । इन्दोः प्रतीची दिक् चन्द्रराशिः
कर्कः पश्चिमायां बली स्यात् । गुरुगृहयोः अक्ष उदक् दिशौ
ज्ञातव्यौ । धनुषो राशेर्नैऋतिदिग् ज्ञातव्या । मीनराशेश्चोत्तरा
दिग् ज्ञेया । ज्ञगृहयोः बुधराशयोः मिथुनकन्ययोः वायव्यदिग्
ज्ञेया । एतासु दिक्षु एतेषा राशीनां वासः स्यादित्यर्थः ॥१७॥

ईशानसे आरंभ करके शुक्र, भौम, शनि और सूर्यकी राशि बल-
वान् होती है अर्थात् ईशानमें वृष तुला, पूर्वमें वृश्चिक मेप, अग्निमें
मकर कुम्भ, दक्षिणमें सिंह राशि बलवान् होती है । तथा पश्चिममें
कर्क, नैऋत्यमें धन, उत्तरमें मीन और वायव्यमें कन्या मिथुन राशि
बलवान् होती है ॥ १७ ॥

संस्कृतटीका—भाषाटीकासमेतम् । (३९)

चन्द्रः यामेयामे प्रहरेप्रहरे ईशादिविदिशां वृषकुम्भौ, मृग-
सिंहौ, धनुः, कन्यामिथुने क्रमेण हन्ति । तदेवाह—चन्द्रः
स्वोदयात्प्रथमप्रहरे ईशानकोणे स्थितो वृषराशिं तथा च कुम्भ-
राशिं हन्ति । द्वितीयप्रहरे अग्निकोणे स्थितो मकरराशिं तथा
च सिंहराशिं हन्ति । तृतीयप्रहरे नैऋत्यकोणे धनू राशिं हन्ति ।
चतुर्थप्रहरे वायुकोणे कन्याराशिं तथा च मिथुनराशिं हन्ति ।
एते राशयो यासु दिक्षु तासु स्थित्वा युद्धं न कुर्यादित्यर्थः १९ ॥

इशानसे आरम्भ करके सब कोणोंमें प्रहर प्रहरमें चन्द्रमा अपने
उदयसे क्रमसे उक्त राशिपोंका घात करता है । यथा ईशानमें वृष
कुम्भ राशिवालोंका, अग्निमें मृग (मकर) सिंहवालोंका, नैऋत्यमें
धनवालोंका और वायव्यमें कन्या मिथुनवालोंका घात करता है !
अतएव यह राशि जिस कोणमें हो उस कोणमें स्थित होकर युद्धादि
नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

चन्द्रहस्तदिक्षुक्रमः ॥	ई. ३११	प.	घा. ५१०
	उ.		द.
	वा. ३१६	प.	नै. ९

उदाहरण ।

यथा चित्र शुक्ल ९ को ककका
चन्द्रमा है । और मनमोहनका
सिंह राशिका अग्निकोणमें घात
होता है । अतएव अग्नेयस्थ होकर
मनमोहनको युद्धादि करना उचित
नहीं है ॥ १९ ॥

दक्षिणां दिशं हन्ति । प्रागन्त्ययोर्यः प्रथमप्रहरस्य प्रथमार्द्धः
अन्तस्य चतुर्थप्रहरस्य द्वितीयार्द्धस्तयोर्युगं तेन प्रथमचतुर्थ-
यामयोः प्रथमद्वितीयार्द्धयुग्मेन याम्यां हन्तीति भावः । एवं
रविदग्धा दिशः तत्काले शुभकर्मसु त्याज्याः ॥ १८ ॥

सूर्य दिनमें प्रथम प्रहरके दूसरे यामार्द्धसे दो दो यामार्द्धोंमें अर्थात्
प्रथमप्रहरका अन्त्य यामार्द्ध और द्वितीय प्रहरका आद्य यामार्द्ध इस
क्रमसे पूर्व आदि तीसरी तीसरी दिशाका निहत (घात) करता है ।
अतः प्रथम प्रहरका आद्ययामार्द्ध और अन्त्य (चतुर्थ) प्रहरके अन्त्य
यामार्द्धमें दक्षिण दिशाका घात करता है ॥ १८ ॥

रविहतदिकचक्रम् ।		
ई.	पूर्व ६-७	आ.
उत्तर ४-५		दक्षिण १-८
घां	पश्चिम २-३	ने.

उदाहरण ।

जो दिशा
सूर्यसे निहत
हो रही हो उस
दिशामें उक्त
यामार्द्धोंमें यात्रा
युद्ध आदि नहीं
करना चाहिये ।
यथा मध्याह्नके

समय उत्तर दिशा रविहत है तो इस दिशामें यात्रा नहीं करनी
चाहिये । अथवा इस समय इस दिशामें स्थित होकर द्यूत वा युद्धादि
भी नहीं करना चाहिये ।

चन्द्रहता विदिग्दिशस्तद्राशीश्वाह ।

ईशाद्विदिशौ चन्द्रो यामे यामे' निहन्ति वृषकुंभौ ।
मृगसिंहौ धन्विनमथ कन्यामिथुनौ क्रमेणैव ॥ १९ ॥

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । (३९)

चन्द्रः यामेयामे प्रहरेप्रहरे ईशादिविदिशां वृषकुम्भौ, मृग-
सिंहौ, धनुः, कन्यामिथुने क्रमेण हन्ति । तदेवाह-चन्द्रः
स्वोदयात्प्रथमप्रहरे ईशानकोणे स्थितो वृषराशिं तथा च कुम्भ-
राशिं हन्ति । द्वितीयप्रहरे अश्रिकोणे स्थितो मकरराशिं तथा
च सिंहराशिं हन्ति । तृतीयप्रहरे नैऋत्यकोणे धनू राशिं हन्ति ।
चतुर्थप्रहरे वायुकोणे कन्याराशिं तथा च मिथुनराशिं हन्ति ।
एते राशयो यासु दिक्षु तासु स्थित्वा युद्धं न कुर्यादित्यर्थः १९ ॥

इशानसे आरम्भ कःके सब कोणोंमें प्रहर प्रहरमें चन्द्रमा अपने
उदयसे क्रमसे उक्त राशियोंका घात करता है । यथा ईशानमें वृष
कुम्भ राशिवालोंका, अभिमें मृग (मकर) सिंहवालोंका, नैऋत्यमें
धनवालोंका और वायव्यमें कन्या मिथुनवालोंका घात करता है ।
अतएव यह राशि भित्त कोणमें हो उस कोणमें स्थित होकर युद्धादि
नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

चन्द्रहस्तदिक्षुक्रमः	ई.	पू.	आ.
	२११		५१०
	उ.		द.
	वा.	प.	त्रै.
	३१६		९

उदाहरण ।

यथा चित्र शुद्ध ९ को ककका
चन्द्रमा है । और मनमोहनका
सिंह राशिका अभिकोणमें घात
होता है । अतएव आग्नेयस्थ होकर
मनमोहनको युद्धादि करना उचित
नहीं है ॥ १९ ॥

गूढापरारूपकेतुहतदिग्विदिश आह ।

गूढारूपयोऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
पष्ठीं पष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभां नैरणे ॥२०॥

गूढारूपः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः
अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा पष्ठीं पष्ठीं दिशं हन्यात्
घातयेत् । तत्सन्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न
शुभम् । तदेव प्रकटयति । प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति ।
द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां
दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वा दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे
वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हन्ति । सप्तमेऽर्द्ध-
यामे ईशानदिशं हन्ति । अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं
रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिंश युद्धयात्रायां
वर्ज्याः । तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः ॥ २० ॥

ग्रहभेद नाम जो गूढारूप है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें
आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा—प्रथम
प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीस-
रेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षि-
णका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और
ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सम्मुख यात्रा
शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढापरारख्यकेतुहतदिग्बिदिश आह ।

गूढारख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।

पष्ठीं पष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभां नैरणे ॥२०॥

गूढारख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा पष्ठीं पष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न शुभम् । तदेव प्रकटयति । प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति । द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वा दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हन्ति । सप्तमेऽर्द्धयामे ईशानदिशं हन्ति । अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिशा युद्धयात्रायां वर्ज्याः । तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः ॥ २० ॥

ग्रहभेद नाम जो गूढारख्य है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा—प्रथम प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीसरेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षिणका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सम्मुख यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढापरारूपकेतुहतदिग्विदिश आह ।

गूढारूपयोऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
पष्ठौ पष्ठौ हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभा न रणे ॥२०॥

गूढारूपः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः
अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा पष्ठौ पष्ठौ दिशं हन्यात्
घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न
शुभम् । तदेव प्रकटयति । प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति ।
द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां
दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वा दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे
वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हन्ति । सप्तमेऽर्द्ध-
यामे ईशानदिशं हन्ति । अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं
रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिरा युद्धयात्रायां
वर्ज्याः । तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः ॥ २० ॥

ग्रहभेद नाम जो गूढारूप है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें
आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा—प्रथम
प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीस-
रेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षि-
णका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और
ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सम्मुख यात्रा
शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढचक्रम् ।		
ई. ७१५	पूर्व ४१२	आ. ११९
उ. २१०	+ + +	द ६१४
चा. १२५	पश्चि. ८१६	ने ३११

उदाहरण ।

यथा-रामको रणके निमित्त दक्षिण यात्रा करनी है तो दिन वा रात्रिमें तीसरे प्रहरका उत्तरार्द्ध त्यागकर यात्रा करना उचित है। रणके अतिरिक्त मलयुद्ध वा द्यूत आदिमें भी यह बल उपयोगी है.

रविचन्द्रयोःपृष्ठदिगादिस्थितौ जयपराजयौ चाह ।

पृष्ठेऽर्को यदि दक्षिणेऽपि पुरतश्छायाथ वामे जयः किन्त्वर्के वहतीह यायिनि विधौ वाहस्थिते स्थायिनि । छाया पृष्ठदक्षिणां निशि शशी वामेऽग्रतो वा जयो यातुंश्चन्द्रवहे परस्य तु रवेर्वामः शशीर्षः क्षयी ॥ २१ ॥

यायिनः स्थायिनोऽपि अर्को यदि दिने पृष्ठे, स्वपृष्ठप्रदेशे दक्षिणप्रदेशे स्यात्तदा छाया पुरतः स्वाग्रप्रदेशे वामप्रदेशे वा पतेत् तदा यायिस्थायिनोर्जयः । किन्त्वयं विशेषः । अर्के वहति दक्षिणभागस्थे पिंगलारूपरविनाड्यां प्राणवायौ वहत्यर्के च पृष्ठदक्षस्थे यायिनि जयो न स्थायिनि । पृष्ठदक्षिणस्थेर्के विधौ चन्द्रमसि वाहस्थिते वहति वामभागस्थेऽारूपचन्द्रनाड्यां प्राणवायौ वहति स्थायिनि जयः । निशि रात्रौ तु शशी

गूढापराख्यकेतुहतदिग्दिश आह ।

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
पष्ठी पष्ठी हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभां न रणे ॥२०॥

गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः
अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा पष्ठी पष्ठी दिशं हन्यात्
घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न
शुभम् । तदेव प्रकटयति । प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति ।
द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां
दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे
वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हन्ति । सप्तमेऽर्द्ध-
यामे ईशानदिशं हन्ति । अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं
रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानि रा युद्धयात्रायां
वर्ज्याः । तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः ॥२०॥

ग्रहभेद नाम जो गूढाख्य है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें
आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा-प्रथम
प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीस-
रेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षि-
णका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और
ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सम्मुख यात्रा
शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढचक्रम् ।		
अं. ७।१५	पूर्व ४।१२	आ. १।२
उ. २।१०	+ + +	द ६।१४
वा. १।५	पश्चि. ८।१६	ने ३।११

उदाहरण ।

यथा-रामको रणके निमित्त दक्षिण यात्रा करनी है तो दिन वा रात्रिमें तीसरे प्रहका उत्तरार्द्ध त्यागकर यात्रा करना उचित है। रणके अतिरिक्त मल्लयुद्ध वा द्यूत आदिमें भी यह चळ उपयोगी है.

रविचन्द्रयोःपृष्ठदिगादिस्थितौ जयपराजयौ चाह ।

पृष्ठेऽर्को यदि दक्षिणेऽपि पुरतश्छायाथ वामे जयः किंत्वर्के वहतीह यायिनि विधौ वाहस्थिते स्थायिनि । छाया पृष्ठदक्षिणां निशि शशी वामेऽग्रतो वा जयो यातुश्चन्द्रवहे परस्य तु रवेर्वामः शशीर्षः क्षयी ॥ २१ ॥

यायिनः स्थायिनोऽपि अर्को यदि दिने पृष्ठे, स्वपृष्ठप्रदेशे दक्षिणप्रदेशे स्यात्तदा छाया पुरतः स्वाग्रप्रदेशे वामप्रदेशे वा पतेत् तदा यायिस्थायिनोर्जयः । किन्त्वयं विशेषः । अर्के वहति दक्षिणभागस्थे पिंगलाख्यपरविनाड्यां प्राणवायौ वहत्यर्के च पृष्ठदक्षस्थे यायिनि जयो न स्थायिनि । पृष्ठदक्षिणस्थेर्के विधौ चन्द्रमसि वाहस्थिते वहति वामभागस्थेऽख्यचन्द्रनाड्यां प्राणवायौ वहति स्थायिनि जयः । निशि रात्रौ तु शशी

चन्द्रो निजवामे अग्रतो वा चेत्तदा छाया स्वपृष्ठदेशे स्वदक्षिण-
प्रदेशे च गच्छति तदा यायिस्थायिनोर्जयः । किंत्वयं विशेषः ।
वामाग्रतो गते चन्द्रे चन्द्रनाडी वहति च यातुर्जयो न स्थायिनः ।
परस्य स्थायिनस्तु वामाग्रगे चेत्सूर्यनाडीवहति च न यायिनः ।
क्षयी क्षीणः शशी चन्द्रो वाम एवेष्टः ॥ २१ ॥

यदि सूर्य पृष्ठभाग (पीठपीछे) या दक्षिण भागमें हो तो छाया
आगे वा बायीं तर्फ होती है । उस समय युद्ध करनेसे स्थायी और
यायी दोनोंका जय होता है । किंतु यदि उस समय सूर्यनाड़ी दक्षिण
स्वर चलता होगा तो यायी (चलनेवाले) का जय होता है । और
चन्द्र वामस्वर चलता होगा तो स्थायी (स्थिर रहनेवाले) का जय
होता है । ऐसे ही रात्रिमें चन्द्रमा बायीं तर्फ वा आगे हो तो छाया
दक्षिण वा पृष्ठ भागमें होती है । उस समय युद्ध करनेसे दोनोंका जय
होता है । किंतु यदि उस समय चन्द्रनाड़ी वामस्वर चलता होगा तो
यायी और सूर्यनाड़ी दक्षिणस्वर चलता होगा तो स्थायी राजाका जय
होता है । और क्षीण चन्द्रमा वाम भागमें शुभ होता है ॥ २१ ॥

उदाहरण ।

सूर्य-गमके पृष्ठभाग और रावणके दक्षिण भागमें होनेसे छाया
अग्रभाग और वामभागमें है सो दोनोंका जय प्राप्त होता है, किन्तु
रामका स्वर दक्षिण चल रहा है । अर्थात् नासिकाके दक्षिणछिद्रसे
श्वास चल रहा है अतएव रामचन्द्रका ही जय होगा । मलयुद्धादिमें
भी यह उपयोगी हो सकता है ।

प्रागादिदिगवस्थितचंद्रवशात्स्थायियायिनोर्जयपराजयम् ।

प्राचीमुदीचीं वा चन्द्रे गते स्थायी जयी भवेत् ।

प्रतीचीदक्षिणादिवस्थे यायी विजयमाप्नुयात् ॥२२॥

प्राचीं पूर्वदिशं गते चन्द्रे उदीचीम् उत्तरां दिशं गते चन्द्रे
उत्तरायणे च सति तदा स्थायी जयी भवेत् । प्रतीची पश्चिमा
दिक् दक्षिणा अवाची दिक् ते प्रति गते चन्द्रे दक्षिणायने
सति तदा यायिनो जयो भवेत् ॥ २२ ॥

• पूर्व और उत्तर दिशामें चन्द्र हो तो स्थायी राजाका जय होता
है । और दक्षिण तथा पश्चिम गत चन्द्र हो तो यायी राजाका जय
होता है ॥ २२ ॥

वायुबलमाह ।

वायुः पृष्ठे दक्षिणे च वहन्सूचयते वलम् ।

सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः ॥ २३ ॥

पृष्ठे दक्षे च वहन् वायुर्वलं सूचयते । यथा प्राङ्मुखस्य
पश्चात्यो दक्षिणात्यो वायुर्वलसूचकः । संमुखीनः सम्मुखे
वहन्वामश्च भटानां योधानां भंगं पराजयं सूचयति ॥ २३ ॥

द्वंद्वयुद्धके समय पीठकी ओर और दक्षिण भागकी ओर वायु चले-
तो युद्ध करनेवालेको बल देती है । और सम्मुख तथा वामभागकी
वायु चलै तो योद्धाओंके भंग होनेकी सूचना देती है ॥ २३ ॥

उदाहरण ।

• यथा-पूर्वकी ओर और पश्चिमकी ओर मुख करके युद्ध करते
समय यदि पश्चिम वा दक्षिणकी ओरसे हवा चल रही हो तो पूर्वकी
ओर मुख करके जो युद्ध करता है उसीका जय होगा । यह वायु
बल मलयुद्धमें विशेष उपयोगी है ॥ २३ ॥

राहुबलमाह ।

प्राग्वातान्तकशम्भुपाशिद्रुतभुकपौलस्त्यरक्षोदिशो
यामौर्द्वैर्युरह्नि पाशिककुभोऽसौ पृष्ठपंथो निशि ।

पृष्ठे दक्षिणतः शुभो द्विघटिकोऽसौ* तुर्यतुर्या-
व्रजेनीशांवाक्पवनेन्द्रराक्षसहिमग्वग्निप्रतीचीदिशः॥२४

अगुः राहुः अह्नि दिने प्राक् पूर्वदिशं प्रथमेऽर्द्धप्रहरे
याति । द्वितीयार्द्धप्रहरे राहुर्वापुदिशं याति । तृतीयार्द्धप्रहरे
अन्तकदिशं—दक्षिणदिशं याति । चतुर्थेऽर्द्धप्रहरे शम्भुदिशम्
ईशानकोणं याति । पंचमेर्द्धयामे पश्चिमदिशं याति । षष्ठे-
र्द्धप्रहरे हुतभुग्दिशम् अग्निकोणं याति । सप्तमेर्द्धप्रहरे पौल-
स्त्यदिशम् उत्तरां दिशं याति । अष्टमेर्द्धप्रहरे रक्षोदिशं निर्ऋति-
दिशं याति । एवं दिनेष्वर्द्धयामराहुः । अथ पाशिककुम्भः पाशी
वरुणस्तस्य दिशं पश्चिमां दिशमारभ्य निशि रात्रौ पष्ठीं पष्ठीं
दिशं याति राहुः । तत्र क्रममाह--रात्रौ प्रथमार्द्धप्रहरमारभ्य
पश्चिमाग्निकोणोत्तरनैऋत्यपूर्ववाद्युदक्षिणेशानेषु राहुर्याति । अयं
पृष्ठे दक्षिणतः शुभः । असौ द्विघटिको राहुः तुर्यतुर्या चतुर्थी
चतुर्थी दिशं व्रजति । तस्य क्रममाह--ईशानकोणे, अवाचि
दक्षिणस्यां, पवने वायुकोणे, इन्द्रे पूर्वस्यांदिशि, राक्षसे निर्ऋति-
कोणे, हिमगोरुत्तरे, अग्निकोणे, प्रतीच्यां च, एतासु दिक्षु
घटिकाद्वयेन एकैकां दिशं याति । पुनर्मध्याह्नोत्तरसंध्यावधि
एवं वसनक्रमः ॥ २४ ॥

राहुः-दिनमें-पूर्व, वायु, दक्षिण, ईशान, पश्चिम, अग्नि, उत्तर
और नैऋत्य इन दिशाओंमें क्रमसे आधी आधी प्रहरमें जाता है

संस्कृतटीका--भाषाटीकासमेतम् । (४५)

और यही राहु रात्रिमें--आधी आधी प्रहरमें पश्चिम दिशासे आरंभ करके छठी छठी दिशामें जाता है । यह पृष्ठ तथा दक्षिण शुभ होता है । और यही राहु-ईशानसे चौथी चौथी दिशा अर्थात्-ईशान दक्षिण, वायु, पूर्व, नैर्ऋत्य, उत्तर, अग्नि और पश्चिम दिशाओंमें दोदो घडीमें गमन करता है ॥ २४ ॥

दिवाराहुचक्रम् ।			निशि राहुचक्रम् ।			द्विघटिकं राहुचक्रम् ।		
ई ४	पूर्व १	अ ६	ई. ४	पूर्व ५	अ २	ई १२	पूर्व ७-८	अ. १३
वत्त. ७		दक्षि ३	उ ३		द ७	उत्तर ११	एवमव क्रमण मध्याह्नोत्तर वसति	दक्षि. ३-४
वा. २	पश्चि. ५	ने ८	वा. ६	प १	ने ४	वा. ५	प. १५-१६	ने. ९
						६		१०

उदाहरण ।

रंगनाथजीको पूर्वदिशामें जाना है । अतएव राहुचल प्राप्त होनेके लिये प्रातःकालमे दूसरी और तीसरे प्रहरके पूर्वार्द्धमें वा रात्रिमें पहली और चौथीके पूर्वार्द्धमें गमन करना शुभ है । अथवा शश्रिता हो तो प्रातःकालसे तीसरा चौथी वा पन्द्रहवीं सोलहवीं घडीमें गमन करना भी श्रेष्ठ है । द्युत आदिमें भी राहुचल देखना आवश्यक है ॥ २४ ॥

योगिनीबलमाह ।

प्राक्सोमानलरक्षोऽवाक्पाशीरेशदिक्षु दर्शान्तैः ।
तिथिभिस्तिथिपदतोऽर्द्धप्रहरैरिनवचतु योगिनी
शस्तां ॥ २५ ॥

प्राक् पूर्वदिक्, सोम उत्तरदिक्, अनलदिग्ग्निकोणः, रक्षोदिक् नैऋत्यकोणः, अवाक् दक्षिणादिक्, पाशी पश्चिमादिक्, इरो वायुदिक्, ईशा ईशानदिक् एतासु दिक्षु प्रतिपदमारभ्य दर्शान्तैः तिथिभिर्योगिनी भ्रमति । तदाह—प्रतिपन्नवम्यां पूर्वदिशि, द्वितीयादशम्यां चोत्तरदिशि, तृतीयैकादश्यां चाग्निकोणे, चतुर्थ्या द्वादश्यां च निर्ऋतिकोणे, पंचम्यां त्रयोदश्यां च दक्षिणस्यां दिशि, षष्ठ्यां चतुर्दश्यां च पश्चिमायां, सप्तम्यां पूर्णिमायां च वायव्याम्, अष्टम्याममायां चैशानकोणे योगिनी भ्रमति । तिथिपदतः तिथिस्थानात् अर्द्धप्रहरैर्योगिनी अष्टसु अर्द्धप्रहरेषु पूर्वक्रमेणैव भ्रमति । सा योगिनी इनवत् सूर्यवत् पृष्ठदक्षिणतः शुभा भवति ॥ २५ ॥

प्रतिपदसे आदि लेकर अमावस पर्यन्त पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य और ईशान इस क्रमसे इन दिशाओंमें योगिनी भ्रमण करती है । अर्थात् प्रतिपदा और नवमीको पूर्वमें, २-१० को उत्तरमें, ३-११ को अग्निमें ४-१२ को नैऋत्यमें, ५-१३ को दक्षिणमें, ६-१४ पश्चिममें, ७-१५ को वायव्यमें और ८-२० को ईशानमें योगिनी रहती है । और तिथिके आरम्भसे लेकर अष्टमांश प्रमाण आधी आधी प्रहरसे उपरोक्त दिशाक्रमानुसार एकही तिथिमें आठों दिशाओंमें योगिनी भ्रमण करती है । और सूर्यकी तरह पृष्ठकी तथा दक्षिणयोगिनी शुभ होती है ॥ २५ ॥

उदाहरण ।

रंगनाथजी प्रपोदश्याको पूर्वकी यात्रा करेंगे अतएव १३ को योगिनीका निवास दक्षिण दिशामें दाहिना है तो श्रेष्ठ है । यदि

संस्कृतटीका--भाषाटीकासमेतम् । (४७)

त्रयोदशीको न जायँ और दशमीको ही जाना पड़ै तो उस दिन पूर्वमें योगिनी संमुख होनेसे शुभ नहीं है । किन्तु तिथिपदतः इसके अनुसार दशमीकी तीसरी प्रहरके पूर्वार्द्धमें दक्षिणमें और उत्तरार्द्धमें पश्चिममें योगिनी रहती है । अतएव उस समय गमन करनेसे योगिनी बल श्रेष्ठ रहता है ॥ २५ ॥

योगिनीवासचक्रम् ।			तिथिपदतो योगिनीचक्रम् ।		
ईशा. ८-३०	तिथि-१-९ पूर्व	३-११ अग्नि	८-यामा ईशान	१-यामा पृथ-	३-यामा अग्नि
उत्तर. २-१०	•••	द. ५-१२	२-यामा- र्द्ध उत्तर	प्रतितिथौ अष्टमाशोन भ्रमति ।	५-यामा र्द्धदक्षिण
वाय. ७-१५	पश्चि ६-१४	नैऋ ४-१२	७-या वायव्य	६-यामार्द्धं पश्चिम,	४-या नैऋत्य-

योगिनीनामान्याह ।

ब्राह्मी कौमारी वाराही वैष्णव्यथैन्द्री च । स्याच्च-
ण्डिका च माहेश्वरी महालक्ष्म्यभिरुया च ॥ २६ ॥

ब्राह्मा, कौमारी, वाराही, वैष्णवी, ऐन्द्री, चाण्डिका, माहेश्वरी और महालक्ष्मी यह प्रतिपदादि क्रमसे उनके नाम हैं ॥ २६ ॥

राहुयुक्तयोगिनीबलप्रशंसायाह ।

पृष्ठे दक्षे योगिनीं राहुयुक्तां यस्यैको यं शर्तुलक्षं
निहन्ति । श्रेष्ठं सर्वेभ्यो बलेभ्यस्तदेतत् संक्षेपो
ऽयं सर्वसारो ऽभ्यधायि ॥ २७ ॥

पृष्ठे पृष्ठभागे, दक्षे दक्षिणभागे राहुयुक्ता योगिनी यस्य भवेदयम् एकः शूरः शत्रूणां लक्षं निहन्ति मारयति । तदेतद्योगिनीराहुबलं सर्वेषु श्रेष्ठम् । मया अयं संक्षेपः सर्वसारः सर्वबलसारः अत्र्यथापि कथितः एतद्वचनं राहुयोगिन्योः प्रशंसामात्रमेव ॥ २७ ॥

जिसके राहुयुक्त योगिनी पृष्ठकी या दक्षिण होय तो वह मनुष्य अकेला ही लाख शत्रुओंको मार सकता है । अतएव यह राहुयोगिनी बल सब बलोंसे श्रेष्ठ है । मैंने इसको सबका सार लेकर संक्षेपसे कहा है ॥ २७ ॥

उदाहरण ।

श्रीमान् देवीसिंह महोदय चैतकृष्ण पञ्चमीको उत्तर यात्रा करेंगे । अतएव यदि उस दिन एक प्रहर दिन चढे पीछे दूसरे प्रहरके पूर्वार्द्धमें गमन करें तो राहुयुक्त योगिनी पीठ पीछेकी होगी और इसका फल बहुत उत्तम है ॥ २७ ॥

रव्यादिवारेषु युद्धे वर्ज्यान्कालार्द्धप्रहरार्द्धानाह ।

हालान्तर्काभसख-यामदलैस्तु कालैः सूर्यादिवासर-
गतो युधि वर्जनीयैः । भासारमेतिदल यामदलानि
भानुवारक्रमादपि नरैः स्वहितार्थमुज्जेत् ॥ २८ ॥

युधि संग्रामे हा ८-लां ३-त ६-का १-भ ४-स७-ख२-
यामदलैः । अष्टत्रिरसचन्द्रवेदशौलाश्विप्रमितैः यामदलैः यामार्द्धैः
कालैः कालबेलाख्यः । सूर्यादिवासरगतः वर्जनीयः । रवि-
वासरे अष्टमोर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, चन्द्रे तृतीयार्द्धप्रहरस्त्याज्यः,

भौमे षष्ठोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, बुधे प्रथमोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, गुरौ चतुर्थोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, शुके सप्तमोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, शनौ द्वितीयोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः । कालवेलाख्योऽर्द्धप्रहरः युद्धे वर्जनीयः, भा४-सा ७-र २-मे ५-द८-ल ३-ति ६-यामदलानि भानुवारः क्रमान्नरः स्वहितार्थमुज्जेत् । रविवारे चतुर्थोऽर्द्धयामस्त्याज्यः । चन्द्रे सप्तमोऽर्द्धयामस्त्याज्यः, भौमे द्वितीयः, बुधे पंचमः, गुरौ अष्टमः, शुके तृतीयः, शनौ षष्ठः । एतेऽर्द्धयामाः संग्रामे सदा त्याज्याः ॥ २८ ॥

सूर्य आदि वारोंमें क्रमसे ह ८-ल ३- त ६-क १-भ ४-म-७ ख २ यह अर्द्धयाम अर्थात् रविवारको आठवां यानार्द्ध, चंद्र हो तीसरा, मंगलको छठा, बुधको प्रथम, गुरुको चौथा, शुक्रको सातवां और शनिको दूसरा अर्द्धयाम काल युद्धमें वर्जनीय है । और सूर्यादि वारोंमें क्रमसे भा ४-सा ७-र२-मे ५-द८-ल३- ति ६-इन प्रहरोंका अर्थात् सूर्यको चौथा, चंद्रको सातवां, भौमको दूसरा, बुधको पांचवां, गुरुको आठवां, शुक्रको तीसरा और शनिको छठा अर्द्धयाम काल अपने हितके निमित्त त्यागदेना उचित है ॥ २८ ॥

अर्द्धयामकालचक्रम् ।							अर्द्धयामकालचक्रम् ।						
हा	८	ल	३	त	६	क	१	भ	४	म	७	ख	२
५	व	म	बु	शु	श	रू	च	न	पु	१	७	श	

उदाहरण ।

यथा—बिहारी लालजी मुनीम शुकुको वितारु जायेंगे अतएव युद्धविषयमें सातवां प्रहरार्द्ध और अपनी शुभकामनाके निमित्त उस दिन तीसरा प्रहरार्द्ध त्याग करके जाना चाहिये ॥ २८ ॥

वारेशंमैन्द्र्यां विनिवेश्यै पश्येत्प्रदक्षिणस्थानगतान् क्रमेण । यामार्द्धभोगाच्छनिरेस्तिं यस्यां यदा न यार्थात्ककुभं तदां ताम् ॥ २९ ॥

वारविरोधेऽर्द्धयामभोगः शन्याक्रान्तस्तत्तद्विग्वर्जनमाह । वारेशं वारस्वानितं सूर्यापद् ऐन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि विनिवेश्य संस्थाप्य । अपरान् वासरान् क्रमेण प्रदक्षिणतः पश्येत् विचारयेत् । उक्तं च—शो वारो वर्तमानो भवति तं वासरं पूर्वस्यां दिशि संस्थाप्य अग्रिमवारम् अग्रिकोणे, तदग्रिमं दक्षिणे, तदग्रिमं नैऋत्ये, तदग्रिमं पश्चिमे, तदग्रिमं वायव्ये, तदग्रिममुत्तरे, तदग्रिममीशाने एवं वारान् पश्येत् । एवं न्यासे कृते सति यस्यां दिशि शनिर्भवति सा दिग् पूर्वतः कियती तत्संख्याके अर्द्ध प्रहरे तां ककुभं दिशं वर्जयेत् । तत्र युद्धार्थं न गच्छेत् ॥ २९ ॥

सूर्यादि वारोंमें जो वारेश हो उसको पूर्व दिशामें स्थापन करे और उसने आगेके वारेशोंको प्रदक्षिण क्रमसे और दिशाओंमें देखे तो जिस दिशामें शनि हो उस दिशामें पूर्वसे आदि लेकर उस दिशातक जितनी संख्या हो उस संख्या प्रमित अर्द्धप्रहरमें उस दिशामें नहीं जाना चाहिये ॥ २९ ॥

ककुभदिक्चक्रम् ।

इ ८	सू पू १	च अ २
श उ ७	+	म द ३
शु वा ६	वृ प ५	जु ने ४

उदाहरण ।

यया-चैत्र कृष्ण
पंचमी बृहस्पति
वारकी श्रीमत्त
सेठ खेमराजजी
दक्षिणयात्रा करे-
गे। अतः उस दिन
वारेश बृहस्पतिको
पूर्वमें स्थापन कर-

नेसे पूर्वमें बृहस्पति, अग्रिमें शुक और दक्षिणमें शनि दीखता है और पूर्वसे दक्षिणतक दिशासंरुपा ३ है । अतएव इस दिन तीसरे प्रहराद्धमें इस दिशामें नहीं जाना चाहिये ॥ २५ ॥

युद्धे वर्ज्या होरामाह ।

वारारम्भाद्धैट्यःखान्ना मात्तौश्च वारपाँद्धोगः ।

रविसिनबुधेन्दुशनिगुरुभौमानामरिखगस्यं साँवर्ज्याँ३०

वारारम्भात्-वारस्य आरम्भात् वारप्रवृत्तिमारुह्य यावन्त्यो
घटिकाः गच्छन्ति ताः खान्ना द्विगुणिताः कार्याः । पुनः
मात्ताः पंचभक्ता वारपाद्वोरा भवन्ति । तत्र वारगणनायां क्रमः-
रविः १- सितः २-बुधः ३- इन्दुः ४- शनिः ५-गुरुः ६
भौमः ७ एतेषां होराः क्रमेण भवन्ति । सार्द्धद्वयघटिका-
प्रमाणा सा होरा- अरेः खगस्य शत्रुग्रहस्य वर्ज्या यो मोद्गुं
गच्छति तस्य राशेः स्वामी यो ग्रहो भवति तस्य घः शत्रुग्रहो
भवति तस्य होरां युद्धे वर्जयेत् ॥ ३० ॥

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । ((५३))

अतएव उपरोक्त गणनानुसार जिस दिन जिस समय सूर्य, चन्द्र, मंगलकी होरा हो उस समय युद्धमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३० ॥

वामांसेऽत्र विरुद्धयामदलजः प्राग्भागके गूढजो
 राहाः स्यात् कुचाधरे श्रुतिशिरोहस्ते प्रहारो रवेः ।
 चन्द्रादास्यभुजद्वये प्रहरणं शत्रुग्रहस्यापि तु ।
 स्याद्द्वारतः किल होरयां हृदि मुखे खड्गादियुद्धे ध्रुवम् ॥

विरुद्धयामगूढराहुरव्यादिषु युद्धाचरणे प्रहरस्थलान्याह ।
 वर्ज्यार्द्धप्रहरादी एषु अङ्गेषु युद्धे घातौ भवति । तदाह- विरुद्ध-
 यामदलजः विरुद्धं यामदलं यामार्द्धं तस्मिञ्जातः विरुद्धयाम-
 दलजः प्रहारः-योद्धुः वामांसे वामस्कन्धे स्यात् । गूढजः
 अर्धप्रहरजः प्राग्भागके शरीरपूर्वभागके स्यात् । राहोरर्धयामजः
 कुचाधरे कुचयोः अधरप्रदेशे च स्यात् । रवेः हता दिक्
 श्रुतिशिरोहस्ते घातं करोति । चन्द्राच्चन्द्रहता दिक् भुजद्वये
 घातं करोति । शत्रुग्रहस्य होरा हृदि मुखे च घातं करोति ।
 खड्गादियुद्धसमये ध्रुवं निश्चयेन ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥

० युद्धके समय उपरोक्त यामार्द्ध, रवि, राहु आदिमें यदि यामार्द्ध
 विरुद्ध हो अर्थात् श्रेष्ठ न हो तो शरीरके वामस्कन्धमें, गूढ विरुद्ध हो
 तो शरीरके ऊर्ध्वभागमें, राहु विरुद्ध हो तो कुचाधर, सूर्य विरुद्ध हो
 तो कान शिर और हाथोंपर, चन्द्रमा विरुद्ध हो तो सम्मुख तथा
 दोनों भुजाओंपर और होरा विरुद्ध हो अर्थात् शत्रुग्रहकी होरा हो
 तो मुख और हृदयपर खड्गादिके युद्धमें निश्चय प्रहार होता है ॥३१॥

उदाहरण ।

उपरोक्त घातव्यवस्था दो प्रकारसे संघटित होती है। एक तो यह कि विरुद्ध यामादिमें आये हुए युद्धप्रवृत्त योद्धाके लिये देवज्ञसे कोई पृष्ठे कि इसके अङ्गमें कहांपर घात होगा तो वह पहले ही कह सकता है कि अमुक स्थानपर घात होगा। अर्थात् जैसे सन्मुख सूर्य में गया है तो वान, शिर और हाथोंपर प्रहार होगा। इत्यादि।

और दूसरे यह भी है कि, अपना शत्रु यदि विरुद्ध यामादिमें आया है और वह विरुद्धताअपनेको विदित है तो उक्त स्थानपर घात करनेसे शत्रु पर बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। यथा राहु विरुद्धमें आया है तो कुर्चोंपर घात करनेसे अधिक प्रभाव पड़ सकता है॥ इसके अतिरिक्त—मल्लयुद्धमें अनुकूल यामदलादिमें उपस्थित एक मल्लको यदि दूसरे मल्लका विरुद्ध यामदलादिमें उपस्थित होना विदित है तो वह उक्त स्थानोंमें चट लगानेसे विजयीहो,सकता है। यथा—चन्द्र विरुद्ध हो तो मुख ओर हृदयपर चोट मारनेसे दूसरा मल्ल शीघ्र पराजित हो सकताहै ॥ ३१ ॥

ग्रहस्थित्या प्रहारस्थलान्याह ।

लग्नाद्राशेश्च पुंसः करिपुकपिनयाधोदभामातंसंस्थाः
खेटौ हन्युर्नवापि द्विपमथ सहसा मूर्ध्नि वैक्रे सह-
त्के । वक्षजे चौरुदेशे गुदे इति तदनु ग्रन्थि-
दो गण्डभागे वास्तुः सूर्तुः स कालः खलममनि-
शर्गैः कर्णकण्ठे शये च ॥ ३२ ॥

● “ लग्नाद्राशेश्च पुंसः शशि १ रवि १२ शिव ११ दिग् १० व्योमगो ९ द्वीप
८ वेद ४ स्थानेष्वर्च ५ वृ ६ संस्था रविराशिकुजवित्पूज्यशुकादिखेटाः । पातं कुर्युर्वधोक्ताः
शिरसि च बद्धने हृत्प्रदेशे स मूर्ध्नि वक्षस्यूरुप्रदेशे गुदे इति तदनु ग्रन्थिदोर्गण्डभागे ॥ ३२ ॥
द्विपाठान्तम् ।

पुंसः पुरुषस्य जन्मलग्नात् जन्मराशेश्च क १-रिपु १२-
 कपि १,१-नया १०-धो ९-द ८-भा ४-मा ५-त ६ एषु
 प्रथम, -द्वादशैकादश, -दशम, -नवाष्ट, -चतुर्थ, -पंचम, -पष्ठेषु
 स्थानेषु स्थिताः नवापि खेटाः रव्यादिग्रहाः मल्लयुद्धे पञ्चंगेषु
 अवयवेषु द्विपं शत्रुं क्रमात् मूर्ध्नि मस्तक, वक्त्रे मुखे, सहत्के
 सहृदयमुखे, वक्षोजे स्तने, ऊरुदेशे, गुदे, तदनु पश्चात् ग्रन्थयोः,
 दोर्भुजे, गण्डभागे कपोले शत्रुम् एतेषु शरीरस्थानेषु ग्रहाः घातं
 कुर्युः । उक्तं च-यो योद्धा युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्तस्य जन्मराशिस्थो
 भास्करो भवति स तस्य शत्रोः मस्तके घातं करोति । योद्धु-
 र्जन्मराशितो द्वादशे जन्मलग्नतो द्वादशे वा चन्द्रः स्थितो भवति
 तदा तस्य शत्रोः मुखे घातं करोति । यदा योद्धुः एकादशे भौमः
 स्थितो भवति तदा तस्य शत्रोः हृदये घातं करोति । यदा योद्धुः
 दशमे बुधग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः वक्षःस्थले घातं करोति ।
 यदा योद्धुर्नवमे गुरुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः ऊरुदेशे घातं
 करोति । यदा योद्धुरष्टमे भृगुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः
 गण्डभागे घातं करोति । यदा योद्धुश्चतुर्थे शनिग्रहो भवति तदा
 तस्य शत्रोः गुदे घातं करोति । यदा योद्धुः पंचमे राहुः स्थितो
 भवति तदा तस्य शत्रोः भुजायां घातं करोति । यदा योद्धुः
 षष्ठे केतुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः कपोले घातं करोति ।
 वास्तुः स्रुतुः, सकालः, ख २-ल ३-स ७-मनिशगः कर्ण-कण्ठे
 शये च । युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्य वास्तुः वास्तुस्वामी गृहारंभलग्न-
 स्वामी गृहप्रवेशलग्नस्वामी वा ग्रहः स्वगतः द्वितीयस्थाने स्थितः

तदा तस्य शत्रोः कर्णे घातं करोति । युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्य सन्तुः
ज्येष्ठपुत्रोत्पत्तिलग्नेशस्तु ग्रहः ले-तृतीये स्थितस्तदा तस्य शत्रोः
कंठं घातं करोति । योद्धुः सकालराशेः अष्टमस्वामी समः सप्तम-
स्तदा तस्य शत्रोः अनिशं निरन्तरं शये हस्तपृष्ठे च घातं
करोति । इति ॥ ३२ ॥

युद्ध करनेवालेको जन्मलग्न वा जन्मराशिसे ' युद्धके समय ' सूर्यो-
दियग्रह के १-गिपु १२ कापे ११-नय १०-ध ९-द ८-भा ४-
मा ५-त ६-इन स्थानोंमें हों तो क्रमसे शत्रुके मस्तक, मुख, हृदय,
वक्षःस्थल, ऊरु, गुदा, ग्रन्थि, भुज और कपोल इनमें घात करती हैं ।
अर्थात् अपने जन्मलग्न वा जन्मराशिसे सूर्य प्रथम हो तो शत्रुके मस्त-
कमें, चन्द्रमा चारहवें हो तो मुखपर, भौम ग्यारहवें हो तो हृदयमें
बुध दशवें हो तो वक्षस्थल, (कुचस्थान) में, गुरु नौवें हो तो ऊरु
(जंघा) में, शुक आठवें हो तो गुदापर, शनि चौथे हो तो ग्रन्थिभाग
(गोंडों) में राहु पांचवें हो तो भुजाओंपर और केतु छठे हो तो
कपोल (गालोंपर) सह स घात करता है ।

और गेहामग्भ या गृहप्रवेश लग्न का स्वामी उस समय दूसरे हो तो
कानोंपर, ज्येष्ठ पुत्रके जन्म अग्रका स्वामी तीसरे हो तो कंठोंपर और
अपना अष्टमेश सातवें हो तो शत्रुके हाथ और पीठपर निरन्तर घात
करता है ॥ ३२ ॥

उदाहरण ।

यथा लक्ष्मणसिंहका राशीश मंगल युद्धके समय कुंभराशिपर होनेसे
लक्ष्मणसिंहको ग्यारहवां है अतएव यह शत्रुके हृदयमें घात करता है ।
वास्तु-गृहप्रवेशलग्न वृषका स्वामी शुक युद्धके समय वृषका होनेसे
लक्ष्मणसिंहको दूसरा है अतएव यह शत्रुके कानोंपर घात करता है ।
लक्ष्मणसिंहके ज्येष्ठ पुत्रका जन्मलग्न मेष युद्धके समय मिथुनका होनेसे

लक्ष्मणसिंहको तीसरा है अतएव यह शत्रुके कंठमें घात करता है ।
और अष्टमेश युद्धके समय तुलारीशका होनेसे लक्ष्मणसिंह को सातवां
है अतएव यह शत्रुके पीठपर निरन्तर घात करता है ॥ ३२ ॥

जन्मलमाज्जन्मराशेर्वा ग्रहस्थितिवशाच्छरीरघातचक्रम् ।											
१	१२	११	१०	९	८	४	५	६	२	३	७
सु	च	मे	बु	गु	शु	श	रा	के	वा	पु	म्र
मूढ	मूढ	मूढदि	सप्तमः	हस्त	शु	प्र	मूढ	मूढयोः	मूढयोः	कूट	हस्तयो

इति समरसारे गूढयामार्द्धयोगिन्यादिसहप्रहारलक्षण-
कथनप्रकरणम् ।

युद्धेऽहिचक्रविरुद्धत्याज्यनक्षत्राण्यह ।

आर्द्रादिभिस्त्रिनाड्यां महिचक्रे यद्ये कनाड्यां स्युः ।
नामार्कचन्द्रभानि प्रथने तदहंस्त्यजेद्यत्नात् ॥ ३३ ॥

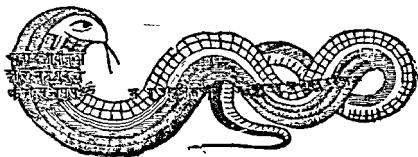
आर्द्रादिभिरिति । यस्मिन् दिने आर्द्रादिनक्षत्रैर्नाडीत्रयनि
मितादिचक्रे एकस्यां नाड्यां जन्मभं नामभं वा सूर्याधिष्ठितं
भं चन्द्राधिष्ठितं भं च त्रीण्यपि स्युस्तदहस्तदिनं प्रथने युद्धे
यत्नात्त्यजेत् । यत्रार्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, अनु-
राधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषक्, भरणी, कृत्तिका एतानि
नक्षत्राणि एकनाडीस्थानि ९, पुनर्वसु—मघा—हस्त—विशाखा
मूल—भवण—पूर्वाभाद्रपदा—अश्विनी—रोहिणीति द्वितीयनाडीस्थ-
भानि ९, शेषाणि पुष्य—श्लेषा—चित्रा—स्वाती—पूर्वाषाढोत्तराषा-
ढोत्तराभाद्रपदा—रेवती—मृगशीर्षाणि ९ भानि तृतीयनाडीस्थानि ।

अत्र-एकनाड्यां नामार्कचन्द्रभानि यस्मिन्दिने त्रीण्यपि
एकस्यां नाड्यां स्युस्तद्दिने युद्ध वर्ज्यमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

आर्द्रा आदि नक्षत्रोंसे नीचे लिखे अनुसार तीन नाडीका अहि
(सर्प) चक्र बनावे । उस चक्रमें यदि एकही नाडीमें नामनक्षत्र यह
सूर्यनक्षत्र और चन्द्रनक्षत्र यह तीनों जिस दिन हों तो वह दिन युद्ध-
यात्रामें यत्नसे त्याग देना चाहिये + ॥ ३३ ॥

उदाहरण ।

यथा—चैत्र शुक्ल सप्तमी बुधवार मृगशिर नक्षत्रके दिन ' राजसिंहका
जन्मनक्षत्र चित्रा, और सूर्य नक्षत्र रेवती, एवं चंद्रनक्षत्र मृगशिर है '
तो यह तीनों नक्षत्रही अंतम (तीसरी) एक नाडीमें स्थित है अतएव
राजसिंहको युद्धयात्राके निमित्त यह दिन त्यागदेना चाहिये ॥ ३३ ॥



वारदिकशूलमाह ।

शनिचन्द्रौ गुरुः मूयमितो कुतबुधौ त्यजेत् ।

चतुर्दिक्षु निषिद्धार्द्धयामे शूलं विशेषतः ॥ ३४ ॥

शनिचन्द्रौ वारौ पूर्वस्यां त्यजेत् । गुरु दक्षिणस्यां त्यजेत् ।
रविभूगुवारौ पश्चिमायां त्यजेत् । भौमबुधवारौ उत्तरस्यां
त्यजेत् । चतुर्दिक्षु एवं क्रमेण ज्ञातव्यम् । निषिद्धार्द्धयामे
यस्मिन् वासरे योऽर्द्धयामो निषिद्धो भवति स त्याज्यो भवति

+ यह सर्पोंका एकनाडीचक्र युद्धयात्राके सिवाय अन्यत्र भी देखा जाता है ।

तस्मिन्नर्द्धयामे वारशुभे च गमनं विशेषण वर्जयेत् । उक्तं च-शनिवासरे षष्ठे यामार्द्धे, चन्द्रवासरे सप्तमे यामार्द्धे पूर्वस्यां दिशि न गच्छेत् । रविवासरे चतुर्थेऽर्द्धयामे, शुक्रवासरे तृतीय-यामार्द्धे पश्चिमां दिशं न गच्छेत् । गुरुवासरे अष्टमयामार्द्धे दक्षिणां दिशं न गच्छेत् । भौमवासरे द्वितीययामार्द्धे, बुधवासरे पंचमयामार्द्धे उत्तरां दिशं न गच्छेत् । एतेऽर्द्धप्रहराः विशेषतो वर्ज्याः, सामान्यतस्तु तद्दिनानि सकृञ्चान्येव वर्ज्यानि ॥ ३४ ॥

शनिवार व सोमवारको पूर्वमें, गुरुवारको दक्षिणमें, रविवार व शुक्र-वारको पश्चिममें और मंगलवार व बुधवारको उत्तरमें नहीं जाना च हिये और जिन वारोंके जो निषेध अर्द्धयाम हों उनमें दिक्शुभको विशेष-कर त्याग देना चाहिये । तथा-शनिको छठे और चन्द्रको सातवें यामा-र्द्धमें पूर्वमें नहीं जाना चाहिये । गुरुको आठवें यामार्द्धमें दक्षिणमें नहीं जाना चाहिये । सूर्यको चौथे, शुक्रको तीसरे यामार्द्धमें पश्चिममें नहीं जाना चाहिये । और मंगलको इमरे तथा बुधको पांचवें यामा-र्द्धमें उत्तरमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

उदाहरण ।

दिक्शुभचक्रम् ।		
	श. च. पू. ६-७	
उत्तर च. भौ. ५-३	+ + + + +	दक्षिण गुरु ८
	स. शु. प. ४-३	

गणेशमत्ताद्
मिश्र गुरुवारको
दक्षिणमें जाना
चाहत हैं किन्तु
उस दिन दक्षिणमें
दिक्शुभ रहनेसे
वह दिन सम्पूर्ण
निषिद्ध है । दिक्

शूलमें बहुधा लोग वारप्रवृत्तिसँ दोष मानकर सुयोदयसे घड़ी दो घड़ी आगे पीछे भेज देते हैं । किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये । दिक्गुलादिमें सुयोदयसे ही वारारंभ मानना चाहिये । यदि गणेश प्रसादको, गुरुवारके दिन ही जाना आवश्यक हो तो आठवाँ अर्द्धयाम त्यागकर फिर जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

नवग्रहाणां स्वस्वभुज्यमाननक्षत्रेष्विन्यादि—

सप्तविंशतिनक्षत्राणामवान्तरभोगमाह ।

धीघ्नां भुक्तनाड्यो नखासिपरिशेषयोगतःसदपि ।
तत्काले शशिभमिति रव्याद्या गतिनुतिलवस्तु
घटिकेह ॥ ३५ ॥

भुक्तनाड्यो नक्षत्रस्य भुक्तघटिकाः धीघ्ना नवगुणिताः कार्याः ततो नखाप्ता विंशतिभक्ताः कार्या । यद्विद्यते तानि गतनक्षत्राणि भवन्ति । तन्नक्षत्रमारभ्य यन्नक्षत्रं दिने भवति । यत्परिशिष्टं भवति तत्तात्कालिकनक्षत्रं ज्ञातव्यम् । एवंतात्कालिक-शशिभमिति-तत्कालिकचन्द्रनक्षत्रं प्रमाणं भानोः सर्व-क्षघटिकाः सप्तविंशतिभिर्भाजिताः । लब्धे सति नक्षत्रघटिका भाजिता गतं भवेत् । खगानां सर्वघटिकाः पूर्वोक्तसहिता भवन्ति । गतिनुतिलवः नक्षत्रगतिः । यावत्सूर्यभौमादीनां ग्रहाणां याः सर्वक्षघटिका भवन्ति घट्यात्मकं प्रमाणं भवति— तासां पट्यंशघटिका प्रमाणं भवति । एवं याः घटिका नक्षत्रस्य गता भवन्ति ताः घटिकाप्रमाणेन भाजेयेत्,—या गतघटिकाः

भवन्ति, ता धीघ्ना नवगुणिता नखात्ताः लब्धं गतनक्षत्राणि
भवन्ति, शेषं वर्तमानं भवति । एवं सूर्यचन्द्रौ विचारणीयौ
कस्मिन्नक्षत्रे तात्कालिकौ भवेतामित्यर्थः । सूर्यादिभोग्यनक्ष-
त्राणां तद्भोग्यकालः षष्ट्यंशः ॥ ३५ ॥

जिस किसी नक्षत्रपर कोई-नी ग्रह जितने समयतक स्थित होता है
उतने ही समयम उस एकही नक्षत्रके अन्तर्में सत्ताइसा नक्षत्रोंके
अन्तरभोग होते है । नक्षत्रपर जिस समय ग्रह स्थित हो उस समय
से लेकर अपने इष्टके समयतक जितना व्यतीत हुआ हो वह भयात
होता है । और आरम्भसे अन्ततक जितना नक्षत्र हो वह भभोग होता
है । एवं भभोगमें ६० का भाग देनेसे जा लब्धि हो वह षष्ट्यंश
होता है ।

भभोग चाहे घट्यात्मक (पूरा ६० घटी वा न्यूनाधिक) हो, चाहे
दिनात्मक हो और चाहे मासात्मक हो-उ । सम्पूर्ण मानफो ६० घटी
और उसके षष्ट्यंशको एक घटी मानकर उस षष्ट्यंशका भयातमें
भाग देना चाहिये । स्मरण रखनेकी बात है कि, भयात और षष्ट्यंश
दोनोंकी विपल करके भाग देना चाये । भाग देने जो लब्धि हो
वह भभुक्त नाडी होती है । उन भभुक्त नाडियोंको नौसे गुणाकर
बासका भाग देनेसे जो लब्धि हो वह ग्रहके वर्तमान नक्षत्रसे आरम्भ
कर गणना करनेसे गत नक्षत्र होते है । और जो शेषहो वह वर्तमान
नक्षत्र होते है । तात्कालिक चन्द्र नक्षत्रसे और इसी प्रकार सूर्यादि
ग्रहोंके नक्षत्रसे प्रत्येक नक्षत्रमें सब नक्षत्रोंके अन्तरभोग होते
है ॥ ३५ ॥

उदाहरण ।

संवत् १९६७ शके १८३२ कार्तिक कृष्णाष्टमी मङ्गलवारको ४९
घटी २१ पलके इष्टपर चन्द्रसूर्यके नक्षत्रांतरभोग जानते हैं । अतः उ,

दिन पुनर्वसु २। ५६ और दूसरे दिन पुष्य १। ७ है। अतएव चन्द्र-
नक्षत्र पुष्यमें अन्तरभोग जाननेके निमित्त उपरोक्त इष्टपर गणितकर-
नेसे ४६ घटी ३५ पल भयात। ५८ घटी ११ पल भोग और ०
घटी ५८ पल ११ विपल पट्यंश आता है। इस पट्यंश ५८।११ के
विपलापिण्ड ३४९१ का भयात ४६।२५ के विपलापिण्ड १६७।०० में
भाग दिया तो ४७।५२ भुक्त नाड़ी प्राप्त हुई। इन ४७।५२ भुक्त
नाड़ियोंको नौसे गुणा किया तो ४३०।४८ हुए। इनमें २० का भाग
दिया तो २१ लब्ध हुए और १०।४८ शेष रहे। यहां वर्तमान पुष्य-
नक्षत्र है अतएव पुष्यसे लेकर अश्विनीतक २१ अन्तरभोगहो चुके
और वर्तमान भरणी है।

इसी प्रकार सूर्यनक्षत्रका अन्तरभोग देखना है तो कार्तिक कृष्ण
५ रविवाको ४९।८ के समय स्वाती पर सूर्य आया है और कार्तिक
शुक्र ४ रविवारको ६।३२ पर्यन्त रहा है। अतएव इस सम्पूर्ण काल
को पट्टिघातक मानके गणित करनेसे सूर्यका—२ दिन ० घटी १३
पल भयात। १३ दिन १७ घटी २४ पल भोगा। और १३ घटी
१७ पल १५ विपल पट्यंश आता है। इस १३।१७।२५ पट्यंशके
विपलापिण्ड ४७८४४ का—भयात २।०।१३ के विपलापिण्ड ४३२७-
८० में भाग दिया तो ९।३ भुक्त नाड़ी प्राप्त हुई। इन ९।३
भुक्त नाड़ियोंको नौसे गुणा किया तो ८१।२७ हुए—इनमें २० का
भाग दिया तो ४ लब्ध और १।०७ शेष रहे। यहां सूर्यका वर्तमान
नक्षत्र स्वाती है। अतः स्वातीसे ज्येष्ठातक ४ अन्तरभोग हो चुके
और वर्तमान मूळ है। स्मरण रखनेकी बात है कि, जिस ग्रहका जो
वर्तमान नक्षत्र हो उसीसे गिनना चाहिये अश्विनीसे कदापि नहीं
गिनना चाहिये वस इमी प्रकार भोमादि सब ग्रहोंके होसकते हैं।
यहां केवल सूर्यचन्द्रका ही प्रयोजन है। इसलिये और ग्रहोंके उदा-
हरण नहीं दिये हैं ॥ ३५ ॥

राहुकालानलचक्रमाह ।

पक्षो जीवो वलितगतिना राहुणेतोडुलोका गम्यो
ऽस्तंस्तद्युतमुद्दुशयं कर्तरीप्रस्तसंज्ञे । स्थायीनो
यायुडुपतिरिमौ जीवगो तज्जयार्थं प्रेताज्जग्धं
किमपि तु वरं कर्तरीं जग्धतश्च ॥ ३६ ॥

वलिता विपरीता वक्रा गतिर्यस्य तादृशेन राहुणा इवा
भुक्ता ये उडूनां नक्षत्राणो लोकास्त्रयोदश जीवपक्षः । राहुः
भुक्तत्रयोदशभानि जीवपक्षसंज्ञानि स्युरित्यर्थः । गम्यस्तु त्रयो-
दशनक्षत्रात्मकः पक्षोऽस्तो मृतसंज्ञकः । तेन राहुणा युतमुद्दु
नक्षत्रं कर्तरीसंज्ञम्, शयं पंचदशं तु प्रस्तसंज्ञं स्यात् । स्थायी
इनः सूर्यो ज्ञेयः । यायो उडुपतिश्चन्द्रो ज्ञेयः । इमौ रवीन्दू
जीवपक्षे गतौ तयोः स्थायियायिनोः क्रमाज्जयाय भवतः ।
धीन्नाभेत्यादि पूर्वश्लोकोक्तरीत्या नीतयोस्तन्नक्षत्रस्थितरवी-
न्द्वोस्तु तत्कालं जयपराजयज्ञानम् । प्रेतान्मृतनक्षत्रात् जग्धं
प्रस्तं पंचदशं नक्षत्रं किञ्चिद्भ्रं श्रेष्ठम् । जग्धाद्प्रस्तात्कर्तरीसंज्ञं
राहुभुज्यमानं भं श्रेष्ठमित्यर्थः । इति राहुकालानलः ॥ ३६ ॥

राहुके वर्तमान नक्षत्रको छोड़कर विलोम गणना करके तेरह
नक्षत्र जीवपक्षके, तथा क्रमगणनासे आगेके तेरह नक्षत्र मृतपक्षके
और राहुयुक्त नक्षत्र कर्तरी तथा उससे पन्द्रहवां नक्षत्र प्रस्तसंज्ञक
होता है । इनमेंसे जीवपक्षके नक्षत्रोंमें यदि सूर्य हो तो स्थायी और
चन्द्र हो तो यायोका जय होता है । शेष मृत, प्रस्त, कर्तरीमें—मृतसे
प्रस्त अच्छा होता है और प्रस्तसे कर्तरी अच्छा होता है ॥ ३६ ॥

उदाहरण ।

यथा-संवत् १९६८ श्रावण शुक्ल एकादशी शनिवारको अश्विनी पर राहु, जेष्ठापर चन्द्रमा और श्लेषापर सूर्य है । अतः अश्विनी नक्षत्र-पर राहु होनेसे अश्विनी कर्तरीसंज्ञक और भरणी, कृत्तिका, रोहिणी मृगाशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा यह १३ भुक्त नक्षत्र जीवपक्षके है । एवं रेवती, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, धनिष्ठा, श्रवण, अभि-जित, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, मूल, ज्येष्ठ, अनुराधा और विशाखा यह १३ भोग्यनक्षत्र मृतपक्षके हैं । तथा स्वाती ग्रस्तसंज्ञक है ॥

यहाँ इस दिन चन्द्रमा जेष्ठानक्षत्र पर होनेसे मृतपक्षका है । और सूर्य श्लेषा नक्षत्रपर होनेसे जीवपक्षका है, अतः स्थायीका विजय आता है ।

यदि इसी दिन यायीका विजय देखना हो तो “ धीमाभभुक्त० ” के अनुसार इस दिन १५।२२ के इष्टपर जेष्ठानक्षत्रमें १७ अन्तरभोग व्यतीत हो जानेसे जेष्ठासे पुनर्वसु तक १७ अन्तरभोग हो चुके और वर्तमान पुष्यका भोग है, अतएव पुष्य जीवपक्षमें आज्ञानेसे १५।२२ के समय यायीको विजय प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥

अश्विनीकर्तरी । राहुकालानलचक्रम् ।													
													ग्रस्त स्वाती
भ	क	र	मृ	भा	पु	पु	श्ले	म	पू	उ	ह	त्रि	भुक्त
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	म.
रे	उ	पू	श	ध	श्र	म	उ	पू	मू	जे	मु	वि	भा
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	स

नामनक्षत्रज्ञानायावकहडचक्रमाह ।

शुण्ठीकोष्ठेषु तिर्यक् त्ववकहडलिखाधःस्थिताली-
 ष्विदाद्यैस्तान्युक्तैस्तैः स्वरैश्च क्रमत् इह कुयुग्धं
 ङ्छौ मध्यकोष्ठे । घैर्घ्रध्वाधरालीष्वनलभतै
 इहासापर्मणैर्भपादां एवं चान्येषु दद्यान्मटपरतं-
 पुयुक्पण्णठौ मध्यकोष्ठे ॥ ३७ ॥ पितृभतै इति
 भानि चाद्विदैवं नयभजत्वाश्चै तर्था भुयुग्यंफौ-
 ङ्ः । हरिभैमवधिरत्रमेत्रतैः स्युर्गसदचलां वसुर्भा-
 द्युक्थज्ञं ॥ ३८ ॥

शुंठीकोष्ठेषु पंचविंशतिकोष्ठेषु तिर्यङ्मार्गेण अवकहड ति
 पंचवर्णान् लिख । तदधःस्थितपंक्तिषु उक्तैः कथितैः तदाद्यैः
 स्वरैः तान्वर्णान्क्रमतः संयोज्य लिख । इह अत्र चक्रे मध्य-
 कोष्ठे कुयुक् षड्छा लेख्याः । इकारायैः स्वरैस्तेषां वर्णानां
 योगः कथं कर्तव्यः ? तत्राह-‘अ व क ह ड’ एतेषु इकार
 संयोगेन ‘इ वि कि हि डि’भवेत् । एवम् उकारसंयोगेन ‘उ वु
 कु हु डु’ भवेत् । एवमेकारसंयोगेन ‘ए वे के हे डे’ भवेत् ।
 एवमोकारसंयोगेन ‘ओ वो को हो डो’ भवेत् । एवं पंचविं-
 शतिकोष्ठेषु वर्णाः लेख्याः यत्र मध्यकोष्ठेषु कुकारः तत्र
 षड्छा लेख्याः । घैर्घ्रश्चतुभिर्श्वतुर्भिर्वर्णैः अनलभतः आसाप

श्लेषान्तं भपादा नक्षत्रचरणाः भवन्ति । यथा-अ इ उ ए ऋत्ति
 कापादाः, ओ वा वि वु रोहिणीपादाः, वे वो का की मृगशिरः-
 पादाः, कु घ ङ छ आर्द्रापादाः, के को ह ही पुनर्वसुपादाः, ङु
 हे हो ङा पुष्यपादाः, ङि ङु ङे ङो श्लेषापादाः । एवमन्येषामपि ।
 एवं च अनेन प्रकारेण अन्येषु पंचविंशतिकोष्ठेषु मटपरतः वर्णा
 लेख्याः । पुनः इकाराद्यैः स्वरैर्युक्ताः कार्याः । अथ तत्राह-
 मि टि पि रि ति, मु टु पु रु तु, मे टे पे रे ते, मो टो पो रो
 तो । एवं क्रमेण वर्णा लेख्याः । यत्र मध्यकोष्ठे पुकारः तत्र
 षण्ठा लेख्याः । पितृभतः मघामारभ्य आद्विदैवं विशाखं
 चतुर्भिर्वर्णैः नक्षत्राणि भवन्ति । तथा च नयभजसा लेख्याः ।
 पूर्वोक्तक्रमेण इकाराद्यैः स्वरैर्युक्ता वर्णा लेख्याः । कथं? तत्राह-
 नि यि भि जि खि, तु यु भु जु खु, ने ये भे जे खे, नो यो
 भो जो खो । यत्र कोष्ठेषु भुकारः तत्र धफडा लेख्याः । मैत्र-
 मनुराधामारभ्य हरिभमवधिः श्रवणपर्यन्तं चतुर्भिश्चतुर्भिर्वर्णैः
 नक्षत्राणि भवन्ति । पुनः मसदचलास्तथैवलेख्याः । पुनरिका
 राद्यैः स्वरैः संयुक्ता लेख्याः । कथं तत्राह-गि सि दि चि लि,
 गु सु ङु चु लु, गे से दे चे ले, गो सो दो चो लो । एवं च
 इकारः तत्र थझज वर्णा लेख्याः । एवं वसुभाहनिष्ठातः भरणी
 पर्यन्तं नक्षत्राणि भवन्ति ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

पांच पांच कोठोंकी पांच पंक्ति बनानेसे पच्चीस कोष्ठक बन जाते हैं । उन (१) पच्चीस कोठोंका प्रथम पंक्तिमें अ-व-क-ह-ड लिखें । और उसके नीचेकी पंक्तियोंमें अ के नीचे इ-उ-ए-ओ-लिखकर व-क-ह-ड को इ आदि स्वरोसे युक्त कके लिखें । और इनके मध्य कोष्ठमें जहाँ “ कु ” लिखा है उसमें ‘घञ्ज’ लिखेंतो ऐसा लिखनेसे उर्ध्वाधः पंक्तियोंमें कृत्तिकासे आदि लेकर श्लेषपर्यन्त चार चार चरणगत वर्ण हो जाते हैं (२) ऐसे ही फिर पच्चीस कोठोंमें म-ट-प-रु-त-लिखकर उनके नीचेकी पंक्तियोंमें इनको इ आदि स्वरोसे युक्त कर लिखें । और इनके बीचके ‘ पु ’ युक्त कोष्ठमें ‘ पणत ’ लिखें तो मघासे लेकर विशाखा तक उसीप्रकार चरणगत वर्ण होते हैं । (३) फिर ऐसे ही पच्चीस कोठोंमें न-य-भ-ज-ख लिखकर इनके नीचेकी पंक्तियोंमें इनको इ आदि स्वरोसे युक्त लिखें और ‘ भ्रु ’ युक्त मध्य कोष्ठमें ‘ धफड ’ लिखे तो अनुराधासे लेकर श्रवण तक चरणगत वर्ण होते हैं । (४) और फिर ऐसे ही पच्चीस कोठोंमें ग-स-द-च-ल-लिखके नीचेकी पंक्तियोंमें इ आदि स्वरोसे युक्त लिख हर ‘ हु ’ युक्त मध्य कोष्ठमें ‘ थक्षज ’ लिखे तो धनिष्ठासे भरणी तक चरणगत वर्ण होते हैं । (यह सब नाम और नक्षत्र ज्ञानके उपयोगी हैं) ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अवकहडकम् ।

अ १	व २	क ३	ह ३	ड ४ पु	म १	ट २	प ३	र ३	त ४ स्वा
इ २	वि ३	कि ४ मू	हि ४ पु	डि १	मि २	टि ३	पि ४	रि ४ वि	ति १
उ ३	वु ४ रो.	कु ५ ख ५ आ १-४	हु १	डु २	मु ३	टु ४ पू	पु ५ प ५ उ ५ १-४	रु १	तु २
ए ४ रु.	वे १	के १	हे २	डे ३	मे ४ म	टे १	पे १	रे २	ते ३
ओ १	वो २	को २	हो ३	डो ४ ख	मो १	टो २	पो २	रो ३	तो ४ वि

न १	य २	भ ३	ज ३	ख ४ मि	ग १	स २	द १	च ३	त ४ श्वि
नि २	यि ३	भि ४ मू	जि ४ ब	खि १	गि २	सि ३	दि ४ पू	चि ४ रे	ति १
नु ३	यु ४ ज्ये	भु ५ ध ५ क ५ ड १-४ पू	जु १	खु २	गु ३	सु ४ श	दु ५ ध ५ क ५ उ १-४	चु १	तु २
न ४ सु	ये १	भे १	जे २	खे ३	गे ४ ध	से १	दे १	चे २	ते ३
नो १	यो २	भो २	जो ३	खो ४ ध	गो १	सो २	दो २	चो ३	तो ४ म

उदाहरण ।

इस चक्रसे नाम और नक्षत्रका सम्यक् ज्ञान होनेके निमित्त सब अक्षरोंके पास एक, दो, तीन चार संख्या लगाकर चार चार संख्याके अन्तरपर नक्षत्रका नाम रख दिया है, इससे नाम नक्षत्र और राशि देखनेमें सुगमता होती है । यथा—प्रथम कोष्ठमें अ की १ संख्या है तो उसके नीचे २ । ३ । ४ । होनेसे अ इ उ ए कृत्तिका नक्षत्र होता है । इसी प्रकार नाम देखना हो तो अच्युत, ईश्वर, ऊर्ध्वबाहु, एकव्रती, नाम कृत्तिकाके होते हैं । ऐसे ही और भी देखे जाते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इति समरसारे नामनक्षत्रज्ञानादिप्रकरणम् ।

हंसचारोक्तिपूर्वकं स्वरबलज्ञानमाह ।

नागैर्नीचैर्निधिज्ञाश्रयनशुक्रमितैः श्वासपर्यायकै-
र्वात्यभ्रं वातोऽनलोम्बुक्षितिरपृथगुपयन्तर्गधोप्युजु-
त्वे । व्यत्यासाच्चान्वीतो हृदयकमले जे पत्रे एकत्र-
तेर्न श्वासां नानाधिसंख्यां नरसंकमलेऽहत्रिंशोस्त्रि-
भ्रंमोऽत्र ॥ ३९ ॥

हृदयकमले अष्टदले पूर्वदिशातः एकैकस्मिन्दले पत्रे एकत-
यद्दे मूलमारभ्य नागैः त्रिंशद्भिः श्वासपर्यायकैः अभ्रम् आकाश-
बलत्वं चलति । कथं वाति अपृथक् वाति संलग्नमेव संधौ वाति ।
पुनर्नीचैः ६० षष्टिसंख्यैः श्वासपर्यायैः उपरि ऊर्ध्वं वातो वायु-
बलत्वं वाति चलति । निधि ९० मितैर्नवतिपरिमितैः श्वासपर्यायैः

अन्तरा तिर्यक् अनलः अग्नितत्त्वं वाति चलति । पुनः ज्ञाश्रयः
 १२० विंशत्यधिकशतपरिमितैः श्वासपर्यायैः अधोभागे अंबुतत्त्वं
 जलतत्त्वं वाति चलति । पुनः नशुक १५० मितैः श्वाशपर्यायैः
 ऋजुत्वं शुद्धमार्गे सति क्षितिः पृथ्वीतत्त्वं वाति चलति । पुनः
 इतरार्द्धे पत्राग्रादारभ्य अवनीतः मध्यात् पृथ्वीतत्त्वात् व्यत्या-
 साद्वैपरीत्यात् पृथ्वीतत्त्वम् ऋजुमार्गेण नशुक १५० मितैः
 श्वासपर्यायैः वाति चलति । पुनस्तदुपरि विंशत्यधिकशतमितैः
 श्वासपर्यायैः अधोभागे अम्बुतत्त्वं वाति चलति । पुनर्नवतिमितैः
 श्वासपर्यायैः अन्तरा तिर्यक् अग्नितत्त्वं चलति । पुनः षष्टि-
 संख्याकैः श्वासपर्यायैः उपरि ऊर्द्धे वायुतत्त्वं चलति । हृदयक-
 मलजे एकत्रपत्रे एवं क्रमेण स्यात् । प्रथमं कमलस्य पूर्वभागस्थे
 पत्रे वायुर्वाति । पुनः अग्निकोणस्थे पत्रे वायुर्वाति, पुनः दक्षि-
 णस्थपत्रे वायुर्वाति । पुनः निर्ऋतिस्थपत्रे वायुर्वाति, पुनः
 पश्चिमस्थे, पुनः वायव्यस्थे, पुनरुत्तरस्थे, पुनरीशानस्थे पत्रे
 वायुर्वाति । एवं क्रमेण तत्त्वं चलति । तत्र तत्त्वानां चलने
 विशेषमाह । आकाशतत्त्वमनंगुलं चलति । चतुरंगुलपर्यन्तं वायु-
 तत्त्वं चलति । अष्टांगुलपर्यन्तं वह्नितत्त्वं चलति । षोडशांगुल-
 पर्यन्तं जलतत्त्वं चलति । द्वादशांगुलपर्यन्तं पृथ्वीतत्त्वं चलति ।
 तेन वायुचलनेन नानाधि ९०० संख्याः श्वासपर्यायाः एक-

स्मिन्पत्रे भवन्ति । संपूर्णम्—अष्टदले कमले ननरसिसंख्याः
 ७२०० द्विसप्ततिशतसंख्याः श्वासपर्यायाः भवन्ति । एकैकस्मि-
 न्पत्रे सार्द्धद्वयघटिकायाः तत्त्वानि चलन्ति । एवमष्टसु पत्रेषु
 विंशतिघटिका भवन्ति । एवमहर्निशोः दिनरात्र्योः त्रिभ्रमो
 भवति । विंशतिघटिकाभिः त्रिवारं भ्रमो ज्ञेयः । एवं सम्पूर्ण-
 महोरात्रे त्रिवारभ्रमेण २१६०० निःश्वाससंख्यात्मिका पष्टि-
 घटिका ज्ञातव्याः । “ एकविंशत्सहस्राणि पट्टशतानि तथोपरि ।
 हंसहंसेति हंसेति जीवो जपति नित्यशः ॥ ” इति ॥ ३९ ॥

हृदयमें आउपत्रोंका अष्टदल कमल है । उस कमलके पृवादि
 दिशाक्रमसे प्रथम पत्रमें ३० श्वास चलें इतनी देरतक नासारंध्रसे लगा
 हुआ आकाशतत्त्व चलता है । फिर ६० श्वास चलें इतनी देरतक
 ऊपरकी तर्फ होकर वायुतत्त्व चलता है । फिर ९० श्वास चलें इतनी
 देरतक तिर्छा होकर अग्नि तत्त्व चलता है । फिर १२० श्वास चले
 इतनी देरतक अधोरूपसे जलतत्त्व चलता है । फिर १५० श्वास चलें
 इतनी देरतक सरल मार्गसे पृथ्वीतत्त्व चलता है । यह पत्रके एक
 तर्फमें मूलसे चलकर ऊपरकी गये हैं । और ऊपरसे चलकर पत्रके
 दूसरी तर्फमें, इसीप्रकार पृथ्वीतत्त्वसे विपरीत होकर मूलतक चलते
 हैं । अर्थात् १५० तक पृथ्वी, १२० तक जल, ९० तक अग्नि, ६०
 तक वायु और ३० तक आकाश तत्त्व चलता है । (इस संचालनके

प्रागादिदिक्पत्रगामिनि प्राणवायौ

यादृक् चित्तवृत्तिस्तामाह

इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वंसने रणायं भोक्तुं रुषे ऽथ
विषयार्थं मुंदे गमांय । चेनोभवेत्कृंपयितुं च नृपास्प-
दायं पत्रद्वयान्तरचरे तुं मुद परस्म ॥ ४० ॥

इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वंसने पूर्वादिदिक्प्रगते वायौ एवं फलं
भवेत् । पूर्वपत्रश्वंसने वायौ चरति सति रणाय मनो भवेत् ।

—द्वादशागुलदीर्घं स्याद्वायुर्व्योमागुलेन हि ॥ ३ ॥ पृथ्वी पीता सित वारि
रफवर्णो धनजयः । मास्तो नीलजीमूत आकाशो वर्णपचकः ॥ ४ ॥ पृथिव्यादि-
त्रितत्त्वेन दिनमासान्दके. फलम् । शोभन च तथा दुष्ट व्योममास्तवहिमि ॥ ५ ॥
पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् । हानिमृत्युफरो पुंसासुभौ हि व्योम-
मास्तौ ॥ ६ ॥ पार्थिवे सतत युद्ध सन्धिभवति वारुणे । विजयो वह्नितत्त्वेन वायौ
भंगो मृतिस्तु ये ॥ ७ ॥ हसचारस्वरूपेण येन ज्ञान त्रिकालजम् । पचतत्त्वेषु भेदोऽय
कथित. पूर्वसूरिभिः ॥ ८ ॥

इन सबका आशय यह है कि, पचभूतात्मक मनुष्य शरीरके हृदयमें आठ
पत्रोंका एक कमल होता है । उस कमलके आठों पत्रोंपर उपरोक्त क्रमानुसार सदैव
दिनरात वायु चलता रहता है । उस वायुमें पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकार—यह
पांचों तत्त्व उपरोक्त नियमानुसार चलते रहते हैं और इनके संचालनसे सब
प्रकारका शुभाशुभ फल विदित होता है । किन्तु रोचनीय स्थल है कि इनका
संचालन कैसे विदित होसकता है । यदि प्रातःकालसे गतकालका हिसाब लगा-
कर केवल उसीके अनुसार तत्त्वसंचालन मान लिया जाय तो वास्तविक तत्त्व-
ज्ञान असंभव प्रतीत हो सकता है । अतएव वास्तविक तत्त्वज्ञानके निमित्त “मध्ये
पृथ्वी अचक्षापः” । “धराष्टागुलदीर्घिका” इत्यादिक उपायोंका आश्रय
लेना समुचित है । यद्यपि अहुत कालतक स्वराभ्यास किये विना सम्यक् तत्त्वज्ञान
नहीं होता है तथापि जब यह निश्चय है कि हृदयकमलपर भ्रमण करनेवाला वायु—

अशिकोणे वायौ चरति भोक्तं मनो भवेत् । दक्षिणपत्रे वायौ
चरति रूपे क्रोधाय मनो भवेत् । निर्ऋतिकोणे वायौ चरति
विषयभोगाय मनो भवेत् । पश्चिमपत्रे वायौ चलति सति मुदे
सन्तोषाय मनो भवेत् । वायुकोणपत्रे वायौ चलति सति गम-
नाय मनो भवेत् । उत्तरपत्रे वायौ चलति रूपयितुं रूपां कर्तुं

नासिकाके वाम या दक्षिण किसीभी एक छिद्रसे बाहर निकलता रहता है और
इसीसे तत्त्वज्ञान किया जासकता है । तब इस कामके लिये उपरोक्त यह, युक्तिया
बहुत ही उपयोगी हैं कि नासिकाके दक्षिण वा वाम किसी भी छिद्रसे निकलता
हुआ वायु (श्वास) यदि छिद्रके बीचसे निकलता हो तो पृथ्वीतत्त्व चलता
है । यदि छिद्रके अधोभागसे अर्थात् ऊपरवाले श्रोत्रको स्पर्श करता हुआ निकलता
हो तो जलतत्त्व चलता है । यदि छिद्रके ऊर्ध्वभागको स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो
अग्नि तत्त्व चलता है । यदि छिद्रसे तिर्छा होकर निकलता हो तो वायुतत्त्व चलता है
और यदि एकछिद्रसे बढकर कमसे दूसरेसे निकलता हो तो आकाशतत्त्व चलता है ऐसा
मानना चाहिये ।

अथवा सोलह अंगुलका एक शंकु बनाकर उसपर ४ अंगुल ८ अंगुल १२
अंगुल और १६ अंगुलके अन्तरपर छेद वा अत्यन्तमदवायुप्रवाहसे हिल सके ऐसा
और कुछ पदार्थ लगाके उस शंकुको अपने हाथमें लेकर नासिकाके दक्षिण वा वाम
किसी भी छिद्रसे श्वास चल रहा हो उसके समीप लगाकरके तत्त्वकी परीक्षा
करे । यदि आठ अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो पृथ्वीतत्त्व समझना चाहिये ।
यदि सोलह अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो जलतत्त्व समझना चाहिये । यदि
चार अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो अग्नि तत्त्व समझना चाहिये । यदि बारह
अंगुलतक बाहर जाता हो तो वायुतत्त्व समझना चाहिये । यदि अंगुल प्रमाण न हो तो
आकाशतत्त्व समझना चाहिये । इसप्रकार तत्त्वसंचालन विदित करके शुभाशुभ काल
मानना चाहिये ।

मनो भवेत् । ईशानकोणे वायौ चलति सति तदा नृपास्पदाय
मनो भवेत् । पत्रद्वयांतरचरे द्वयोः पत्रयोर्मध्ये वायौ चरति
परस्मै मुदे सन्तोषाय मनो भवेत् । एवं सन्धौ चेत्सर्वत्र परस्मै
ज्ञेयः । वायुसाधनं गुरुपदेशादेव बोद्धव्यम् ॥ ४० ॥

उक्त अष्टदश कमलके पूर्व पत्रमें वायु चलता हो तो संग्रामके वास्ते
मन होता है । आग्नि कोणक पत्रपर चलता हो तो भोजनके वास्ते ।
दक्षिण पत्रपर चल रहा हो तो क्रोध करनेके वास्ते । नैऋत्य कोणके
पत्रपर चलता हो तो विषय भोगके वास्ते । पश्चिम पत्रपर चलता हो
तो आनंदके वास्ते । वायुकोणके पत्रपर चलता हो तो गमन करनेके
वास्ते । उत्तरके पत्रपर चलता हो तो कृपा करनेके वास्ते । ईशान
कोणपर चलता हो तो राज्यप्राप्तिके वास्ते । और दो पत्रोंके बीचमें
वायु चलता हो तो परमानन्दकी प्राप्तिके लिये मन होता है ॥ ४० ॥

पृथ्व्यादितत्त्ववहनफलमाह ।

धराम्बुनी शुभे महो विमिश्रितं फलं भवेत् ।
मरुन्नभश्च दुःखदे मते स्वरार्थवेदिभिः ॥ ४१ ॥

धराम्बुनी तत्त्वे पृथ्वीजलतत्त्वे शुभौ भवतः । महः अग्नितत्त्वे
चलने मिश्रितं फलं भवेत् । मरुद्वायुतत्त्वं नभश्चाकाशतत्त्वमूएते
द्वे तत्त्वे दुःखदे मते इष्टे कथिते इत्यर्थः । केः स्वरार्थवेदिभिः
स्वराणामर्थं तात्पर्यं विदन्ति जानन्ति तैः ॥ ४१ ॥

पृथ्वी औ जलतत्त्वमें शुभ फल होता है । अग्नितत्त्वमें शुभाशुभ
मिला हुआ फल होता है और वायु तथा आकाशतत्त्व दुःखदायी होते
हैं, यह स्वरशास्त्रके तात्पर्य जाननेवालोंका मत है ॥ ४१ ॥

द्वत्कमलपत्रेषु रविचंद्रवहनकथनपूर्वकं प्राणवायु-
संचारेऽर्द्धघट्यादिज्ञानमाह ।

द्वे द्वे पत्रे इनेन्दू वहत इह तयोः पंच पंचेति घट्यो
नाकी गुर्वक्षरोक्त्याऽसुरथ च नतला सुर्घटी कथ्य-
तेत्रं । शुक्लादित्रिचिघसैर्हिमगुरथ रविः प्रत्युपश्चेत्
प्रवृत्तः श्रेयः स्यादकनाड्यांयादि वहति शिखी पंच-
घसैर्मृतिः स्यात् ॥ ४२ ॥

द्वे द्वे पत्र इति । इनेन्दू सूर्यचन्द्रौ प्रत्येके द्वे द्वे द्वत्कमलदले
अभिव्याप्य वहतः तयोस्तयोःपत्रयोःसूर्यचन्द्रवहनात् पंच पंच
घट्यः भवन्ति । नाकीगुर्वक्षरोक्त्या, दशगुर्वक्षरोक्त्या दशगुर्व-
क्षरोच्चारणैरेकासुः प्राणः । कालरूपो भवति । नतला ३६०सुः
षष्ट्युत्तरत्रिशतप्राणपरिमाणैका घटी अत्र शास्त्रे कथ्यते ।
शुक्लादि शुक्लपक्षमारभ्य प्रतिपदादिभिः त्रिभिस्त्रिभिर्घट्यदि-
नैर्हिमगुश्चन्द्रः प्रत्युपः प्रातःकाले पंचघटीर्वाति । पुनः पंच
घटीरर्कः । एवं क्रमेणाहोरात्रम् । तदनु चतुर्थ्यादित्रिदिनैःरविः
प्रातस्तावति काले वाति । एवं कृष्णपक्षे प्रतिपदादिदिनेष्वर्कः ।
पुनश्चतुर्थ्यादौ इन्दुः । एवंक्रमेणवाति । एवमुक्तेषु स्वस्वदिनेषु
शशिरव्यादिषु-सोमो रविश्च प्रत्युपः प्रातःकाले प्रवृत्तः स्यात्तदा

श्रेयः कल्याणं स्यात् । यदि एकस्यां चान्द्र्यां सौर्यां नाड्यां
 शिखी वह्नितत्त्वं पंचघञ्चैर्दिनपंचकं बहेत् तदा मृत्युं विजानी-
 यात् । तदुक्तं स्वरोदये—“ आदौ चन्द्रस्तिते पक्षे भास्करस्तु
 सिते तरे । प्रतिपद्युदितोऽहानि त्रीणि त्रीणि क्रमोदयः ॥ १ ॥
 चन्द्रोदये यदा सूर्यश्चन्द्रः सूर्योदये यदा । अशुभं हानिरुद्वेगः
 शुभं सर्वं निजोदये ॥ २ ॥ शशाङ्कं चारयेद्रात्रौ दिवाचार्यो
 दिवाकरः । इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संयशः ॥ ३ ॥”
 ॥ इति ॥ ४२ ॥

उपरोक्त अष्टदलकमलके दो दो पत्रोंपर सूर्य चन्द्रमा पांच पांच
 घडी चलते हैं । (यथा दक्षिणनाडीके एक एक पत्रमें अढाई
 अढाई घडी चलनेमें दोनों पत्रोंपर पांच घडी सूर्य चलता है । ऐसे
 ही वाम नाडीके दोनों पत्रोंमें पांच घडी चन्द्रमा चलता है । फिर
 वैसे ही ५ घडी सूर्य और ५ घडी चंद्रमा चलता है । इस प्रकार
 २० घडीमें संपूर्ण कमलमें चलकर रात्रिदिनमें तीनवार भ्रमण कर
 जाते हैं) । यहाँ एक घडीका प्रमाण इस प्रकार मानना चाहिये
 कि—दीर्घ अक्षरके दशवार उच्चारण करनेमें जितना समय लगे उतने
 समयका एक असु (प्राण वा श्वात) होता है । ऐसे ३६० श्वात
 जितनी देरमें चलें उतनी देरकी एक घडी होती है । ऐसी पांच
 पांच घडोंमें सूर्य (दक्षिणस्वर) चंद्र (वामस्वर) चलते
 हैं । शुद्धपक्षकी प्रतिपदासे तीन तीन दिन चंद्रमा और सूर्य

संस्कृतटीका--भाषाटीकासमेतम् । (७९)

क्रमसे चलते हैं यदि यह प्रातःकालके समय नियमित दिनोंमें चलें तो कल्याणकारक होते हैं । और यदि पांच दिनतक एक नाडीमें अग्रि-
तत्त्व चले तो मृत्यु होजाती है ❀ ॥ ४२ ॥

शुक्रपक्षे चन्द्रस्वरज्ञानचक्रम् ।

शुक्र	स्वर	चं.	चं.	चं.	सु	सु	सु	चं	चं	चं	सु	सु	सु	चं	चं	चं	शु
	तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	म

कृष्णपक्षे सूर्यस्वरज्ञानचक्रम् ।

कृष्ण	स्वर	सु	सु	सु	चं	चं	चं	सु	सु	सु	चं	चं	चं	सु	सु	सु	शु
	तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	म

* (शुक्रपक्षे) प्रतिपत्तिषु चन्द्रस्य चतुर्ध्यास्त्रिषु भास्वतः । सप्तम्यादित्रिषु विधोर्देशम्यास्त्रिषु भास्वतः ॥ १ ॥ तत्त्रिषु विधोः प्राक्स्वाडुदयः स्वे रवेरपि । (कृष्णपक्षे) प्रतिपत्तिषु सूर्यस्य चतुर्ध्यास्त्रिषु चन्द्रमाः ॥ २ ॥ सप्तम्यादित्रिषु रवेर्देशम्यास्त्रिषु चन्द्रमाः । तत्त्रिषु रवे. प्राक्स्वाडुदये स्वे शुभे इमो ॥ ३ ॥ प्रतिपद्मतिरेव ज्ञेयः । पचपचपटीनानादेकैकस्य हि धो भवेत् । आदौ चन्द्रस्ततस्सूर्यस्सितेऽन्येऽकंस्तेतो विधुः ॥ ४ ॥ सूचना-इस प्रकरणमें जो तिथिका उदय लिया गया है वह पचासस्य तिथिके उदयानुसार नहीं लेना चाहिये । जिस दिन जो तिथि हो उसीको आजके प्रातःकालसे लेकर कलह (आगामी) प्रातःकाल पर्यन्त मानना चाहिये । और उन्ही ६० घण्टियोंमें उपरोक्त नियमानुसार चन्द्रस्वर और सूर्यस्वरका उदय मानना चाहिये । “ सूर्योदयादारभ्य प्रवृत्तिरुक्ता, न तिभ्युदये ” ।

रख्यादिवहने युद्धाधारम्भे जयमाह ।

अर्केऽग्निरत्त्ववहने हरिहेलयौ य-
 धेकोऽपि हन्ति सुबहून् किमुतात्रं चित्रम् ।
 शून्ये रिपून् स्वंपृतनार्मपि वाहपक्षे
 निक्षिप्यं विक्षिपति लक्ष्मरीन् क्षणेन ॥ ४३ ॥

अर्के सूर्यनाड्याम् अग्निरत्त्वं वहति चेत्तदा. हरिहेलया विष्णुलीलया सिंहलीलया वा एकोऽपि भटः सुबहून्योधान् हन्ति अत्र किं चित्रम् किमाश्चर्यम् । शून्ये शून्यनाड्यां रिपून् शत्रून् निक्षिप्य संस्थाप्य । स्वपृतनां स्वकीयां सेनां वाहपक्षे या नाडी चलति तत्र निक्षिप्य संस्थाप्य लक्ष्म अरीन् शत्रून् एकेन क्षणेन विक्षिपति नाशयति ॥ ४३ ॥

यदि सूर्यनाडीमें अग्निरत्त्व चलता हो तो सिंहकी लीलाकी तरह अकेलाभो अच्छे अच्छे बहुत योद्धाओंको मार सकता है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । और जिस तर्फका स्वर नहीं चलता हो उस तर्फमें शत्रुको और वाहपक्ष अर्थात् जिस तर्फका स्वर चल रहा हो उस तर्फमें अपनी सेनाको स्थापन करे तो क्षणभरमें बहुत शत्रुओंका नाश कर सकता है ॥ ४३ ॥

ख्यादिनाडीवहने प्रश्नविशेषमाह ।

प्रश्ने चंद्रवहे तु वामगरेणोक्ते जयो निश्चितं
 सूर्ये दक्षगतेन कृच्छ्रविर्जयी शून्यस्थदूते क्षंतिः ।

सूर्ये चेद्विषमाक्षराणि शशिनि ब्रूते समानि ध्रुवं ।
जेतासौ पुरतोपि वामग इव स्यात्पृष्ठंगो दक्षिणेः ॥४४॥

प्रश्नकाले चन्द्रवहे सति चन्द्रनाड्यां वहत्यां सत्यां वाम-
भागस्थितनरेण उक्ते कथिते सति निश्चितं जयो भवति । सूर्ये
सूर्यनाड्यां वहत्यां सत्यां दक्षिणभागे गतेन नरेण प्रश्न उक्ते
सति कृच्छ्रविजयी कष्टेन विजयी स्यात् । शून्यनाडीभागे
स्थित्वा चेत्पूतः पृच्छति तदा क्षतिर्हानिर्वाच्या । सूर्ये सूर्यवहने
दक्षिणनाडीवायौ चलति सति दूतो विषमाक्षराणि ब्रूते कथयति ।
शशनि चन्द्रवहे वामनाडीवायौ चलति सति समानि अक्षराणि
वदति तदा असौ जेता ध्रुवं निश्चयेन जयति । यः पुरतः अग्रतो
भूत्वा पृच्छति स वामभागस्थो ज्ञातव्यः । यः पृष्ठगः सन्
पृच्छति स दक्षिणभागस्थो ज्ञातव्यः । उक्तंच—“ ऊर्ध्ववामाग्रतो
दूतो ज्ञेयो वामपथस्थितः । पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्थादक्षवाहस्थितो
मतः ॥ पूर्णनाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छतिशुभा शुभम् । तत्सर्वं
सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः ॥ सूर्ये चेद्विषमान्वर्णा-
न्समवर्णान्निशा करे । वाहस्थे भास्करे दूतस्तदा लाभोऽन्यथा न
हि ॥” इति ॥ ४४ ॥

प्रश्नके समय चंद्रस्वर चलता हो और पृच्छक वाम भागमें खड़ा होकर पूछे तो निश्चय जय होता है । और सूर्यस्वर चलता हो

और पृच्छक दक्षिण भागमें खड़ा होकर पूछे तो कष्टसे जय होता है । यदि शून्यभाग अर्थात् जिस तर्फका स्वर नहीं चलता हो उस तर्फमें खड़ा होकर पूछे तो हानि होती है । यदि सूर्य (दक्षिण) नाडीमें विषम और चंद्र (वाम) नाडीमें समाक्षर उच्चारण करे तो अवश्य जय होता है । यहाँ—सम्मुख हो उसको वामभागमें और पृष्ठगत स्थित हो दक्षिणभागमें जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

प्रश्ने परं विशेषमाह ।

प्रश्नः श्वासांतर्गमे चेज्जैयः स्याद्भङ्गो निर्यांत्यत्र
सूक्ष्मं तदेतत् । लाभः पुत्रादेश्चै वाहस्थदूते पृच्छे-
त्युक्तेः शून्यंगे स्यादसिद्धिः ॥ ४५ ॥

प्रष्टव्यस्य निश्वासादानाकाले चेत्प्रष्टा पृच्छेत्तदा तस्य जयः । अनिश्वासवायौ निर्याति बहिर्भवति भङ्गः स्यात् । तेदत्त्सूक्ष्मं स्वरयोगान्तरेभ्यः । किञ्च पुत्रादेः पदार्थस्येष्टलाभ उक्तः । कथमित्याह—वाहस्थेति । दूते पृच्छके वाहस्थे वहन्नाडीप्रेदशसंस्थे सति तथा शून्यस्थे दूते पृच्छति असिद्धिः स्यात् । तथाचोक्तम्—“ श्वासप्रवेशकाले तु दूतो वाञ्छति जल्पितुम् । तत्सर्वं सिद्धिमायाति निर्गमे नास्ति सुन्दरि ” इति ॥ ४५ ॥

जिस समय श्वास भीतर जा रहा हो उस समय पृच्छक प्रश्न करे तो जय और बाहर आ रहा हो उस समय प्रश्न करे तो हानि होती है । किन्तु यहाँ यह विचार बड़ा सूक्ष्म है । यदि जिस तर्फका स्वर

चरहाहो उस तर्फ खडा होकर पुत्रादिकोंका प्रश्न करे तो लाभ होता है । और जिस तर्फका स्वर नहीं चलताहो उस तर्फसे पूछे तो कार्य नहीं होता है ॥ ४५ ॥

✕ सूर्यचन्द्रनाडीवहने कर्तव्यकर्माण्याह ।

चन्द्रे वहे नृपविलोकनगेहवेशपट्टाभिषेकमुखकर्मभवे-
च्छुभं यत् । सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धमुख्य
भवेदंशुभकर्मफलाय सत्यम् ॥ ४६ ॥

चन्द्रे वहे इति । चन्द्रे वहे चंद्रसम्बन्धिनः वामनाडी-
वहने नृपस्य राज्ञो विलोकनम्; गेहप्रवेशो गृहप्रवेशः, पट्टाभिषेको
नृपाणाभेतन्मुखम् एतदादिकं यत्कर्म शुभं तत्र शस्तं भवेत् ।
सौरे तु सूर्यनाड्यां दक्षवहने तु मज्जनं स्नानं, वधूरतिः
भुक्तिर्भोजनं, युद्धम् एतदादिकं कर्म अशुभं सिद्ध्यति ।
यत्कर्म तदिह फलदं भवेत् । सत्यमिति बुद्धयनुकूलम् ।
उक्तंच—“ यात्राकाले विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे । शुभ-
कर्मणि सन्धौ च प्रवेशे च शशी शुभः ॥ १ ॥ ग्रहे द्यूत-
युद्धेषु स्नानभोजनमैथुने । व्यवहारे भये भंगे भानुनाडी प्रश-
स्यते ॥ २ ॥ होमश्च शांतिकं चैव दिव्यौषधिरसायनम् ।
विद्यारंभं स्थिरं कार्यं कर्तव्यं च निशाकरे ॥ ३ ॥ मारणं
मोहनं स्तंभं विद्वेषोच्चाटनं वशम् । प्रेरणाकर्षणं क्षोभं भानु-
नाड्युदये कुरु ॥ ४ ॥” इति ॥ ४६ ॥

चन्द्रस्वर्में राजदर्शन, गृहप्रवेश और राज्याभिषेकादि शुभकर्मोंकी सिद्धि होती है और सूर्यस्वर्में—स्नान, स्नानसंभोग, भोजन और युद्ध आदि अशुभ कर्मोंकी सिद्धि होती है ॥ ४६ ॥ +

रतिविधिं त्रिवशुस्तत्र स्त्रीणां मुख्यं द्रावणमाह ।

वहति शशिनि वाश्वेदंगनायां नरस्य युमणिमनु
कृशानुस्तत्र काले रतेषु । स्रवति मदनवारां निर्झरं^{१०}
सार्थं पुंसा यंदि शिखिनवनीताशक्तिवद्भाविता
स्यात् ॥ ४७ ॥

अंगनायाः स्त्रियः शशनि चन्द्रनाड्यां वहति सति वाः
जलतत्त्वं चेद्वाति । नरस्य पुरुषस्य युमणिः, सूर्यनाडी तम्
अनु लक्ष्यकृत्य कृशानुः अग्नि तत्त्वं चेद्वाति । पुरुषस्य सूर्य-
नाडीवहने अग्नि तत्त्वं वाति । तत्र काले रतेषु प्रारब्धेषु सत्सु
सा योपित् मदनवारां कंदर्पजलानां निर्झरं स्रवति । अथ यदि
पुंसा सा योपित् नवनीताशक्तिवद्भाविता स्यात्—यथा अग्नि-
संयोगे नवनीतं द्रवति तथा पुंसा भाविता वशीकृता-योपिन्म-
द्वनजलानां निर्झरं स्रवति बलहानिर्भवति, योपित्पराजयो
भवति, पुरुषस्य जयो भवति ॥ ४७ ॥

+ इयं स्वर प्रसंगमे जहा जहा चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर, चन्द्रनाडी, सूर्यनाडी, चन्द्रे वहे, सूर्ये वहे—और चन्द्रचारे सूर्यचारे, इत्यादि वाक्योंका जो उपयोग किया गया है इन सबका यही प्रयोजन है कि नाकके दक्षिण और वाम दोनों छिद्रोंके किसी भी एकसे आसपी हवा सदैव बाहर निकलती रही है । अतएव यह हवा दक्षिण छिद्रसे निकल रही हो तब तो सूर्य और वामछिद्रसे निकल रही हो तब चन्द्र स्वर जानना चाहिये ॥

यदि जिस समय स्त्रीका चन्द्रस्वर चल रहा हो और उसमें जलतत्त्व चलता हो + और पुरुषका सूर्यस्वर चल रहा हो और उसमें अग्नि तत्त्व चलता हो तो उस समय रति (मैथुन-संभोग) करनेसे-जैसे आगसे नवनीत (मक्खन, लुनी घी) गलकर बह जाता है वैसेही वह स्त्री, पुरुषसे द्रावित होकर मदनजल त्याग करदेती है। एवं निर्बल और पराजित होजाती है ॥ ४७ ॥

✓ वशीकरणमाह ।

सुप्तायां निजवहदुष्णरश्मिनाड्यां चंद्रं चेद्वहेनगतं
पिवेत्तदानीम् । आमृत्योर्वशयति तामियं च कांतं
चन्द्रेण द्युमणिवहं मुहुः पिवन्ती ॥ ४८ ॥

सुप्तायाः स्त्रियः भर्ता निजवहदुष्णरश्मिनाड्या स्त्रियश्चन्द्रं
वहनगतं चन्द्रनाडीवायुं तदानीं पिवेत् । कोऽर्थः ? भर्ता स्वद-
क्षिणनाड्या स्त्रियो वामनाडीं पिवेत् तदा तां स्त्रियं आमृत्योः
मृत्युपर्यन्तं वशयति वशीकरोति । इयं च योपित्स्वचंद्रनाड्या
भर्तुः द्युमणिवहं सूर्यनाडीवायुं मुहुः वारं वारं पिवन्ती सती
तदा आमृत्योर्मृत्युपर्यन्तं भर्तारं वशयति ॥ ४८ ॥

भर्ताका सूर्यनाडी चलती हो अर्थात् दक्षिणस्वर चल रहा हो
और भर्ताके समीप शयन करतीहुई स्त्रीका चंद्र (वामस्वर) चल-

+ इन्ही चन्द्रस्वर, सूर्यस्वरोंमें पृथ्वी, अग्नि, तेज, वायु और आकाश यह पाचों
तत्त्व उपरोक्त हसचारोक्तिके नियमानुसार चलते रहते हैं । किंतु इनका अनुलक्ष्य
धरतलाध्य नहीं है । मिथ्याद्वार विहारादि दोषोषे प्रहन चलता अर्धमी ही यदि
नाक पकडकर सिद्धासिद्ध बहनेमें तत्पर होजाय तो शास्त्रको बलविकृत करनेके सिवाय
दूसरा फल प्रतीत नहीं होता है ।

रहा हो तो भर्ता अपने दक्षिणस्वसे स्त्रीके वामस्वका पान करे तो स्त्री मरणपर्यंत वश होजाती है ऐसे ही यदि स्त्री अपने वामस्वसे भर्ता (पति) के दक्षिण स्वरका वारंवार पान करे तो पुरुष मृत्युपर्यंत वशभूत होजाताहै ॥ ४८ ॥

✓ मदनयुद्धमाह ।

मोहनं मदनयुद्धमृचिरे तत्सुधीरण इवात्र चेद्वलम् ।
प्रोक्तमेतदुपैतिमैथुनंद्रावयेत्तदबलां सुविह्वलाम् ॥ ४९ ॥

मोहनं सुरतं, बुधाः मदनयुद्धं कंदर्पयुद्धम् ऋचिरे कथयामासुः । कोऽर्थः—तत्र कंदर्पयुद्धे सुधीः बुधः रणे संग्रामे इव बलम् आचरेत् अंगीकुर्यात् । यथा रणे स्वरबलविचारः क्रियते तथा सुरतेऽपि स्वरबलं विचारणीयम् । किं कुर्यन् प्रोक्तं बलं यदा अंगीकुर्यन् सन् मैथुनं सुरतं उपैति प्राप्नोति तदा सुविह्वलाम् अबलां स्त्रियं द्रावयेत् निर्बलां कुर्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥

सुंदर बुद्धिवाले पण्डित लोग मोहन (स्त्रीसंयोग) को मदनयुद्ध कहतेहैं । इस युद्धमेंभी संग्रामकी तरह उक्तस्वरबल लेना चाहिये । यदि स्वरबल लेकर मैथुन करे तो मदविह्वला अबलाको द्रावित करके निर्बल कर सकता है ॥ ४९ ॥

✓ द्यूतविषये स्वरबलमाह ।

स्वरेच्छायानिलाकैन्दुयोगिनीराहुभूर्बलैः ।
अन्येश्च द्यूतमावधेःअर्थेत्येव धेनं वहु ॥ ५० ॥

१५२: बालः कुमारको वर्णस्वराः, छाया सूर्यचन्द्रयो-
 रछाया, अनिलो वायुः, अर्कः सूर्यः, इन्दुः चन्द्रः, योगिनी
 प्रसिद्धा, राहुभूवलानि च एतेषां बलैः अन्यैश्च बलैः काल-
 चारार्द्धप्रहरहोरादीनां बलान्यादाय तैर्बलैः सहायैर्युतं क्रीडा-
 विशेषम् आबधन् कुर्वन् तदा बहु धनं जयत्येव ॥ ५० ॥
 "ॐ हीरण्यहंफट्स्वाहा" (इति यतमंत्रः) ।

बाल कुमारादि वर्णस्वर, सूर्यचन्द्रादिकी छाया, वायु, सूर्य, चन्द्र,
 योगिनी, राहु और भूवल इत्यादि सब बलोंको विचारकर यदि युत-
 क्रीडा करे अर्थात् जुभा खेले तो बहुत धनको जीत सकता है ॥ ५० ॥

इति समरसारे तत्त्वविचारस्वरकथनप्रकरणम् ।

भक्ष्यधारणादिना जयसाधनान्यौषधान्याह ।^१

आस्ये तालजटाथकेतकीदलं शीर्षं च स्वार्जूरके मूले-
 ऽङ्गुस्थं इण्डुर्लगेत्त्र संघृतैर्भुक्तैर्जीर्णैश्च तैः । कंमार्युत्तर-
 मूलिकैर्निरशनैः पुष्यार्क आत्ता धृता जग्धा वां
 सह तं दुलांबुभिर्रथो पाठा जटापीदंशी ॥ ५१ ॥

आस्ये मुखे तालजटा तालवृक्षस्य मूलं स्थाप्य, केतकीदलं
 केतकीपत्रं शीर्षं मस्तके धार्यम्, स्वार्जूरके मूले स्वार्जूरस्य वृक्षस्य
 मूले अंकस्थे सति इण्डुःबाणःन लगेत् । अथवा सघतानि इमानि
 तालमूलं, केतकीपत्रं, स्वार्जूरमूलम् इमानि भुक्तानि यावत् उदरे
 जीर्णानि न भवंति तावत् स च बाणो न लगेत् । कंसारी हींसति
 प्रसिद्धा लता, तस्या उत्तरदिक्स्था मूलिका मूलं निरशनैः शना-

बुपोष्य पुष्यार्कयोगे आत्ता गृहीता धृता शरीरे । सह तंदुला-
म्बुभिर्जग्धा खादिता वा शरीरे शरीरवारणाय स्यात् । अथः
पाठा जटापि । पाठा प्रसिद्धा तन्मूलमपि ईदृक् शनिवारैः निरशनैः
पुरुषेण पुष्यार्के ग्राह्यम् । सधृततंदुलजलेन वा सह भुक्तश्चेत्तदापि
वाणो न लगेत् ॥ ५१ ॥

मुखमें तालकी जड, शिरमें केतकीके पात और गोदमें खजूकी
जड लगावे तो वाण नहीं लगता है । अथवा इन सबको घोंमें
मिलाकर खाजाय, तो जबतक इनका अजीर्ण रहे तबतक वाण नहीं
लगता है । अथवा कंसारीकी उत्तरदिशाकी तर्फकी जडका शनिग्रहके
दिन उखाव करके पुष्यसहित इत्तवारके दिन लाकर धारण करे तो
वाण नहीं लगता है । अथवा घोंमें और आंशुलके पानाय सहित
खावे तो भी वाण नहीं लगता है । अथवा पाठाजटाको इसी प्रकार
धारण करे वा खावे तो भी वाण नहीं लगता है ॥ ५१ ॥

अंकोला लक्ष्मणां पुंखां सर्पाक्षी शिखिचू लका ।
विष्णुक्रांता काकजंघां नीली देवी च पांटला ॥५२॥
भुजास्यमूर्धगां भुक्ता तज्जटापि वारयेत् ।
रणेदारुणशस्त्राद्यं यावज्जीर्यति नोदरे ॥ ५३ ॥

अंकोलः प्रसिद्धः, लक्ष्मणा पुरुषाकारमूर्त्तौपधिविशेषः, पुंखा
शरपुंखा, सर्पाक्षी—सर्पनेत्राकृतिपुष्पा, शिखिचूलिका मयूरशिखा
विष्णुक्रान्ता, नीलपुष्पा—प्रसिद्धा, काकजंघा तदाकारा, नीली
प्रसिद्धा, देवी सहदेयो, पाटला प्रसिद्धैव तज्जटा एतासामौपधीनां
मूलानि तन्मध्ये एकापि जटा भुजे बाही धृता आस्ये मुखे वा
धृता शिरसि स्थिता वा खादिता वा रणे संग्रामे

दारुणं शस्त्रौघं तीक्ष्णशस्त्रसमूहं वारयेत् । कियत्कालमित्यपे-
क्षिते यावदिति । यावत्पर्यन्तमुदरे न जीर्यति । भुक्तपक्षे चैतत्
धारणपक्षे तु यावद्धारणं तावच्छस्त्रवारणम् ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अकोहर, लक्ष्मणा (सफेद कटेली), शरपुंखा, सर्पांशी, मयूर-
शिखा, विष्णुकान्ता, काकजंघा, नीली, सहदेवी और पाटली यह
औषध भुज, मुख और मस्तकमें लगावे । अथवा इनमेंसे किसी भी
एककी जड़को खालेवै तो जबतक बह नहीं पचे तबतक रणमें दारुण
शस्त्रोंके समूहको निवारण करती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्वर्णाभा सिंहिकाकिण्यां मिहीघृष्टैः सतजटैः ।
अंतस्थः पारदः सिक्थमुद्रो जयद आस्यगः ॥ ५४ ॥

स्वर्णाभा स्वर्णवत्पीतवर्णा या सिंही काकिणी कपर्दकस्त
स्मिन् सिंही कंटकारी तन्मूलरसेन घृष्टः सिंही जटासहितः पारदः
सोऽन्तरस्थो मध्यस्थः । सिक्थेन मुद्रमीणकेन मुद्रितः ।
आस्यगो मुखस्थो जयदः रणादौ विजयदाता ॥ ५४ ॥

सोनेके रंग जैसी पीली, निहीनामकी फौडीमें कटेलीके पत्ते और
जड़के रसमें घोटा हुआ पाग भरकर गुटिका बनावे और उस गुटि-
काको संग्रामके समय मुखमें रखे तो जय होता है ॥ ५४ ॥

चक्रमर्दकैगोजिह्वाशि खचूडौजटांस्वपि ।
एकैका वादजयदा पुष्यार्कात्तास्यमूर्द्धगा ॥ ५५ ॥

चक्रमर्दको चक्रवन्दः, गोजिह्वा गोभी, शिखिचूडा मयूर-
शिखा, एतासु मध्ये एकैका जटा पुष्पार्कयोगे आत्ता गृहीता
आस्यगा मूर्द्धगा वादजयप्रदा ॥ ५५ ॥

. चक्रवन्द (पँवाड), गोभी, मयूरशिखा इनमेंसे किसी एककी जड़ पुष्पार्कके दिन ग्रहण करके मुख, अथवा मस् कमें धारण करे तो वादमें जय होता है ॥ ९९ ॥

‘ विशेष ’ ऊपर जो औषधि + कहीगई हैं इन सबको उपाडने लाने

+ ईश्वरी ब्रह्मदेवी च कुमारी वैष्णवी तथा । बाराही वज्रिणी चढी तथा
 रूद्रजटामिथा ॥ १ ॥ लागली सहदेवी च पाठा राजी पुनर्नवा । मुद्री भूतवेशी
 च सोमराजी हनूजटा ॥ २ ॥ श्वेतापराजिता गुञ्जा श्वेता च गिरिकर्णिका । क्षुद्रिका
 शक्तिनी चैव विष्णी शरपुखिका ॥ ३ ॥ खजूरी केतकी ताडी पूगी स्थान्नारिकेलिका ।
 अंजनः काचनारव चपकोऽश्मतक. कुट्ट ॥ ४ ॥ अपामर्गाकमृत्नी च ब्रह्मचूचो
 नबरतथा । शतमूली बलायुग्म गोजिङ्गोपलसारिका ॥ ५ ॥ अष्टलोहा रसा वज्री हृदि
 तालक शिला । एतारचौपथयो दिव्या जयार्थं संप्रदेव्युषः ॥ ६ ॥ खजूरी मुखमप्यस्था
 कटिबद्धा च केतकी । भुजदडस्थितस्तालः सर्वशस्त्रनिवारणः ॥ ७ ॥ दक्षबाहुस्थितश्चार्थ
 वामेदुर्दये धरा । रुद्रः पृष्ठस्थितो युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ८ ॥ (यामले) सिंही
 न्याग्री मृगी हृसी चतुर्धेव कपर्दिका । एतासा लक्षण वक्ष्ये प्रभाव च यथाक्रमम् ॥
 ॥ १ ॥ सिंही सुवर्णवर्णा च व्याग्री भूमा सरपिका । मृगी तत्र विजानीथारपीतपृष्ठी
 शितादरी ॥ २ ॥ हृसी जलतरा श्वेता विदता नातिदीर्घिका । एव विशेषान्विज्ञाय
 ततः कर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥ श्लेषधी सिद्धिका नाम तस्या मूलस्य यो रसः ।
 सिंहीकपर्दिकामध्ये क्षेप्यस्तन्मूलस्युतः ॥ ४ ॥ पिधाय वदन तस्याः सिक्थेन च
 समन्वितः । अस्या बकरिपताया तु सिंहवधायते नरः ॥ ५ ॥ व्याग्रीरसेन सपृष्टः
 प्रारदो मूलस्युतः । पूर्ववत्साधयेद्दयाग्री फल चैव तथाविधम् ॥ ६ ॥ मृगमूत्रेण समिधा
 शक्तिकारसस्युता । मृगधिष्णे क्षिपेन्मृग्या तस्या. फलमतः शृणु ॥ ७ ॥ मुखमध्ये स्थिताया
 च वशीभवति मानवः । रतिकाले सुखस्याया बालापाणदरो नरः ॥ ८ ॥ हसपादीरसैर्पृष्टः
 ‘ चारदे’ मूलस्युतः । हसीमध्ये क्षिपेद्दीमान् मुखस्था सर्वसिद्धिदा ॥ ९ ॥ इति ॥

और ग्रहण करनेकी यह विधि है कि जिस किसी दिन पुष्यनक्षत्र और इतवार हो उसके प्रथम दिन शनिवारको उपवास करके शुभ समयमें इच्छित औषधिको नाल सुपारी और अक्षतादिसे " ओं नमो नारायणाय स्वाहा " इस मंत्रसे न्यौतकर रविवारके दिन औषधिके समीप जाकर खैरकी खूँटीसे खोदके " ओं क्रीं अनु हुं फद् स्वाहा " यह मंत्र बोलता हुआ उपाडकर " ओं कुमारजननीय स्वाहा " इस मन्त्रसे ग्रहण करके " ओं सर्वार्थसाधनीयस्वाहा " इस मन्त्रसे ले आवे और फिर यथासमय काममें लेवे तो यथोक्त फल होता है ।

इति समरसारे औषधप्रकरणम् ।

यापिस्थायिनोर्जयपराजयौ विवक्षुः कोटचक्रमाह ।

भास्त्राणि प्रलिखेदुपर्युपरि च त्रीणिशदिश्यग्निभाद्-
बाह्यात्रीणि लिखांतराच्छिवभतोप्येन्द्र्यां च सार्पं वहिः ।
आग्नेयादिति पितृतो यमदिशि न्यस्यन्वहिसप्तमं
मैत्राद्रासंवतोऽन्ययोःखयवहिरु मध्यमेतश्चदम् ॥५६॥

भवर्णेन चतुःसंख्या लक्ष्यते । ततः भास्त्राणि चतुरस्राणी-
त्यर्थः । तानि उपर्युपरि च त्रीणि । एकस्य चतुरस्रस्य लघुनः
उपरि महद्व्यलिखेत् । तदुपरि च ततोऽधिकमन्यदेवं त्रीणि
लिखेदित्यर्थः । तत्र च मध्यस्थं चतुरस्रं कोटसंज्ञम्, तेषु त्रिष्वपि
चतुरस्रेषु ईशदिशि ऐशान्याम् अग्निभात्कृत्तिकानक्षत्रमारज्य
त्राह्लाच्चतुरस्रादारभ्य त्रिष्वपि ऐशान्यामन्तर्विशन्ति त्रीणि मृग-
शिरोऽन्तानि लिखेति शिष्यनिमन्त्रणे लोड् । अन्तरात् मध्य-
वर्तिनश्चतुरस्रात् शिवभमार्द्रातदारभ्य त्रीणि भानि ऐन्द्र्यां प्राच्यां

दिशि चतुरस्रत्रयप्राग्नेस्वामधप्रस्थानेषु बहिर्निस्तरन्ति लिख ।
 सार्पमाश्लेषां बहिर्वाह्यचतुरस्रापि बहिः प्राच्यमेतद्विख । इत्य-
 मुनैव प्रकारेण आग्नेयात्कोणादारभ्य पितृतो मघानक्षत्रायम-
 दिशि दक्षिणस्यां सप्तमं विशाखां बहिर्न्यस्य लिख । मैत्रादनु-
 राधाभाद्वासवतो धनिष्ठाभाच्च अन्ययोनैर्ऋत्यवायव्ययोःकोणयोः
 प्राग्बद्धिखेति सम्बन्धः । एवं दिग्विदिग्वाह्यचतुष्कत्रयेण स्वयं १२
 द्वादशभानि बहिःचतुरस्रे लिखितानि स्युः । मध्ये चतुरस्रे च
 दं ८ दिग्विदिकस्थतया अष्टौ स्युः । अन्तः मध्यचतुरस्रे च
 दं ८ अष्टौ भानि स्युः । एवं कोटचक्रे साभिजिति अष्टाविंशति-
 भानि लिखितानि स्युः चक्रम् ॥ ५६ ॥

[यहां जो कोटचक्रके विषयमें वर्णन किया जाता है इसी चक्रको एक इस प्रकारका किला समझो कि मानो किसी जगह एक राजाका सेना आदि जन समूह सहित पुर, आवश्यक सामग्री सहित बसा हुआ है (१) उसके चारों तरफ चार कूटका एक सुविशाल किला वा पारकोटा खड़ा हुआ है (२) और उस पारकोटेके बाहर चोतर्फ अन्य सेना आदि जनसमूह उपस्थित होनेका स्थल है (३) इस प्रकार यह किला तीन भागोंमें विभाजित हो रहा है । अर्थात् (१) भीतर गढप-तिका जनसमूह सहित पुर (२) बीचमें पारकोटा और (३) बाहर अन्य सेना आदि है । अतएव इन्हीं तीन विभागोंपर लक्ष्य देकर 'भास्त्राणि प्रलिखेत्' इसके अनुसार तीनरेखात्मक चतुरस्र चक्र संघ-टित किया गया है । उसमें प्रथम रेखात्मक भीतरकी तरफके स्थलको मध्य वा अंतर । द्वितीय रेखात्मक पर छोटे छोटे-वपकोट प्राकार वा वप्रमध्य । और तृतीय रेखात्मक बाह्यस्थलको बाह्य और वेष्टक

इन नामोंसे उल्लेख किया गया है । अतएव ग्रहस्थित्यनुसार फल देखनेमें इसका स्मरण रखना चाहिये]

भास्य अर्थात् चार कोणका तीन रेखात्मक चक्र बनावे । और उसके ईशानकोणमें बाहरवाली रेखासे आरंभ करके कृत्तिकादि तीन नक्षत्र लिखे । फिर पूर्वकी तर्फ भीतरवाली रेखासे आरंभ करके आर्द्रासे त्रिनक्षत्र लिखे और इन तीनोंमें बाहर श्लेषा लिखे, फिर ऐसेही अग्नि कोणमें मघा आदि तीन नक्षत्र और दक्षिणमें हस्तसे तीन लिख । यहां बाहर विशाखा लिखे; फिर ऐसेही नैऋत्यकोणमें अनुराधा आदि तीन लिखे और पश्चिममें पूर्वाषाढादि तीन लिखे और बाह्यभागमें श्रवण लिखे और वायव्यमें धनिष्ठा आदि तीन नक्षत्र लिखे और उत्तरमें उत्तमभाद्रपदादि तीन लिखे और बाह्यभागमें भरणी लिखे तो "कोटचक्र" बन जाना है । इसमें १२ बाह्यके ८ मध्यके और ८ अन्तरके नक्षत्र होते हैं ॥ ५६ ॥

कोणभानि प्रवेशे स्युर्द्रादर्शान्यानि निर्गमे ।
षष्ठपष्टं सप्तकेषु मध्ये स्तम्भवनुष्टयम् ॥ ५७ ॥

कोणा ईशानाद्याः तत्र लिखितानि यानि कृत्तिका, मघा, अनुराधा, धनिष्ठादीनि त्रीणि त्रीणि भानि कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरः, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूलं, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा—एतानि द्वादश कोणभानि तानि ग्रहाणांकोटप्रवेशे भवन्ति । प्रवेशतयालिखितत्वात् । अन्यानि पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, चित्रा, स्वाति, विशाखा, उत्तराषाढ, अभिजित्, श्रवणं, रेवती, अश्विनी, भरणी, एतानि चतसृषु प्राच्यादिदिक्षु स्थितानि द्वादशभानि

निर्गमे गृहाणांस्युः । निर्गमतया लिखितत्वात् । सप्तकेषु अश्वि-
नीष्यस्वात्यभिजिदादिषु चतुर्षु चतुर्दिक्षु स्थितिषु प्रथमात्
यत्पष्टं पष्टं यथा अश्विन्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठम् आर्द्रा ।
षुष्यादि सप्तसु नक्षत्रेषु पष्टं हस्तः । स्वात्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु
पष्टं पूर्वाषाढः । अभिजिदादिसप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठम् उत्तरा
भाद्रपदा एतानि चत्वारि भानि मध्ये कोटस्थं भचतुष्टयं स्तम्भ
संज्ञं स्यात् ॥ ५७ ॥

चारों कोणके वारह नक्षत्र प्रवेशक होते हैं । अन्य वारह नक्षत्र
निर्गमके होते हैं । और अश्विन्यादि सात सातमें उठे छठे चार नक्षत्र
बीचमें स्तम्भके होते हैं ॥ ५७ ॥

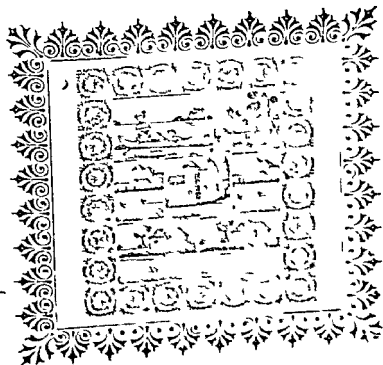
उपलक्षणमेव कृत्तिकादौ प्रथमं दुर्गर्भमेव वैरिभं वा ।
ग्रहचक्रमुडुस्थमालिखे द्वै चतुरस्रं वरणं च मध्यमं
स्यात् ॥ ५८ ॥

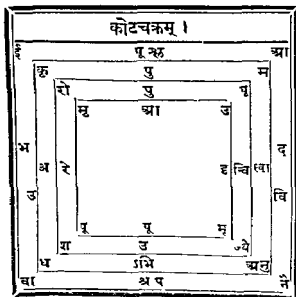
इदं पूर्वश्लोके कृत्तिकादिभलेखनमुक्तम्, तदुपलक्षणमेव न तु
नियमेनोक्तम् । कृत्तिकादौ च लेख्ये प्रथमं दुर्गस्थानं दुर्गर्भं
पूर्वोक्तादवकहडचक्राज्ज्ञातव्यम् । दुर्गनक्षत्रं कोणभम् ईशान-
कोणे लेख्यम् । अथवा वैरिभं शत्रुभम् । अवकहडचक्रोत्थं तद्वा
ईशानकोणे लेख्यम् अन्यानि प्राग्गलेख्यानि । तेषु च भेषु
ग्रहचक्रं सूर्यचन्द्रादिनवग्रहान् उडुस्थनक्षत्रगततया लिखेत् ।
समस्तग्रहाः स्वस्वभुज्यमाने नक्षत्रे स्थाप्या इत्यर्थः । अथ
कोटचके मध्यमं चतुरस्रं वरणं प्राकारस्थानीयं भवेत् ॥ ५८ ॥

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । (९७)

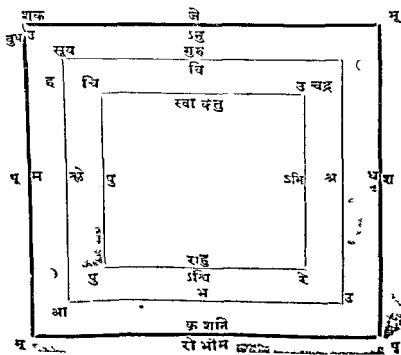
ऊपर जो कृत्तिका आदि लिखा है वह केवल उपलक्षण है ।
 ऐसा नियम नहीं है कि कृत्तिकासे आदि लेकरही लिखना) दुर्ग
 (फिला) वा वैरीका जो नक्षत्र हो उसीसे आरंभ करके उपरोक्त
 शीतिके अनुसार “ कोटचक्र ” में नक्षत्रोंको लिखै । और जिस
 नक्षत्रपर जो ग्रह हों उनकोभी उन नक्षत्रोंपर स्थापन करै । इस
 चक्रमे बीचका चतुरस्र जो हे यह प्रकारस्यानीयहै ॥ ५८ ॥

वाटचक्रस्य चित्रम् ।





संवत् १९६८ शके
१८३३के आश्विन शुक्ल
१० दशमी चंद्रवारको
'पात्र पुञ्ज' नामक
कल्पित किलेपर ग्रह-
स्थिति देखनीहै अतएव
पात्रपुञ्जके नामनक्षत्र
उत्तमफालगुनको ईशा-
नकोणमें स्थापितकरके
उपरोक्त क्रमानुसार
'कोटचक्र' निर्माण
किये, तो इसप्रकार
तैयार हुआ ।



उसदिन हस्तपर सूर्य, उत्तरपादपर चन्द्रमा, रोहिणीपर मङ्गल, उत्तराफाल्गुनीपर बुध, विशाखापर गुरु, उत्तराफाल्गुनीपर शुक्र, कृत्तिकापर शनि, अश्विनीपर राहु और स्वातिपर केतु है। अतएव इनको भी कोटचक्रमें यथास्थानपर स्थापना किया तो फलदेखनेके उपयोगी चक्र तैयार होगया ॥५८॥

कूरसौम्यग्रहावस्थित्या दुर्गभंगरक्षादिकमाह ।

कूरा अंतर्बाह्यगाः सौम्यखेटां दुर्गं भंगो वैपरी-
त्यात् । कूरा मध्ये वप्रगाः सौम्यखेटां भेदो भंग-
श्चात्र युद्धं विनापि ॥ ५९ ॥

कूराः पापग्रहाः अन्त्यन्तरे । बाह्यगाः सौम्यखेटाः शुभग्रहाः
तदा दुर्गभंगः कोटभंगो भवति । वैपरीत्यादेवं वेष्टकभंगः । कथं-
शुभग्रहाः अन्त्यन्तरगाः पापग्रहाः बाह्यस्था- स्युस्त्वदा वेष्टकानां
भगः । कूरा मध्ये सौम्येखेटा वप्रगाः कोटबाह्यस्थाः अत्र योगे
युद्धं विनापि भेदो भंगश्च भवति ॥ ५९ ॥

कूरग्रह कोटके भीतर हों और सौम्यग्रह कोटके बाहर हों तो फिलेका भङ्ग होता है (१) यदि इससे विपरीत अर्थात् सौम्यग्रह भीतर हों और पापग्रह बाहर हों तो वेष्ट अर्थात् आए हुए राजाकी सेनाका भङ्ग होता है (२) और कूरग्रह मध्यमें अर्थात् परकोटके भीतर और सौम्यग्रह कोटपर हों तो विनायुद्धही भेदसे भंग होजाता है (३) ॥ ५९ ॥

उदाहरण ।

इस कोटप्रसंगके उदाहरणमें भापाटीकामें जहां जहां (१) (२) आदि संख्याके अंक दियेगये हैं तहां तहांकी स्थितिके अनुसार उदाहरणरूप चक्र लिख दिये हैं । अतएव इन चक्रोंकी स्थितिके अनुसारही सर्वत्र फल जानना चाहिये ॥५९॥

(१)

(२)

३)



व्यत्यासे त्वावेष्टकस्यैव भंगो दुर्गे भग्नेऽप्युद्धवे नात्र मिथ्या । प्रकारेऽतः क्रूरखेटा वहिश्चेत्सौम्याः कृच्छ्रादुर्गभंगंस्तदानीम् ॥ ६० ॥

व्यत्यासे उक्तवैपरीत्ये आवेष्टकस्यैव भंगः । कथं शुभग्रहाः कोटमध्यस्थाः । पापग्रहाः वप्रगाः कोटस्थाः । तदा दुर्गे भग्नेपि आवेष्टकस्यैव भंगः । अत्र मिथ्या च—सत्यमेव वदेत् । प्राकारे मध्यकोट, अंतःकोटमध्ये क्रूरखेटाः पापग्रहाः । वहिश्चेत्सौम्याः शुभग्रहाः तदानी कृच्छ्रात्कृच्छ्रादुर्गभंगो वाच्यः ॥६०॥

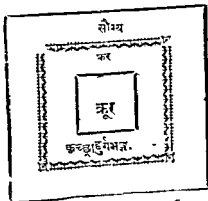
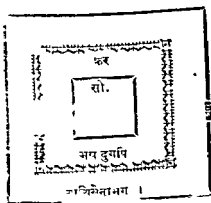
संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । (१०१)

विपरीत अर्थात् सौम्यग्रह कोटके भीतर हों और पापग्रह कोटपर हों तो किला टूटजाय तो भी बाहरकी सेनाकाही नाश होता है (१) और परकोटपर तथा परकोटके भीतर तो पापग्रह हों और परकोटसे बाहर सौम्यग्रह हों तो कष्टों किलेका भङ्ग होता है ॥६०॥

(१)

उदाहरण ।

(२) 37260

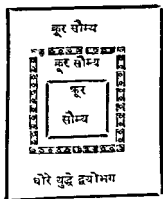
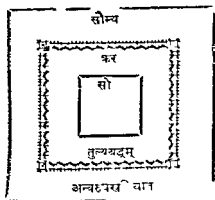


वप्रे बाह्ये क्रूरखेटांश्च मध्ये सौम्याः खंडिः स्यान्न
दुर्गस्य भंगः । वप्रे सौम्या अन्तरा बाह्यतश्च क्रूरा
भंगः सैन्यन्योः स्याद्द्वयोस्तु ॥ ६१ ॥

वप्रे, बाह्य क्रूरग्रहाश्चेत्स्युः । मध्ये सौम्यास्तदा दुर्गे
खंडिमात्रं स्यान्न दुर्गस्य भंगः । वप्रे सौम्याः । अन्तरा
बाह्यतश्च क्रूराः क्रूरखेटाः तदा द्वयोः स्थायियायिसैन्ययोः
भंगः स्यात् ॥ ६१ ॥

यदि पापग्रह परकोटपर और बाहर हों और सौम्यग्रह भीतर हों तो
दुर्ग खंडितमात्र होजाता है । टूट नहीं सकता है (१) और सौम्यग्रह
तो किलेपर अर्थात् परकोटपर ह और क्रूरग्रहबाहर और भीतरों तो
यापी (चढ़ाईकरके आनेवाला राजा) की और स्थायी (दुर्गाधीन-
राजा) की दोनोंकी सेनाकाभङ्ग होता है ॥ ६१ ॥

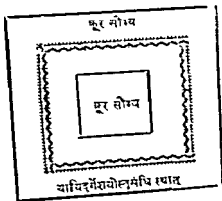
उदाहरण ।



तुल्यां बाह्यैतश्च चेत्क्रूरसौम्याः
सन्धिर्वाच्यो यायिदुर्गेशयोस्तु ।

तुल्याः समक्रूरसौम्याः पापग्रहाः शुभग्रहाः बाह्ये देश
अन्तर्देशे च स्युस्तदा यायिदुर्गेशयोः सन्धिः प्रीतिर्वाच्यः ।

यदि कोटके बाहर और कोटके भीतर दोनों जगह क्रूर और
सौम्यग्रह तुल्य हों अर्थात् बाहर जितने क्रूर ग्रह हों उतनेही सौम्यग्रह
भी हों । और भीतर जितने सौम्यग्रह हों उतनेही क्रूरग्रह हों तो स्थायी
(दुर्गावीश) और यार्थ दोनों राजाओं में सन्धि (राजीनामा) होजाता है ।



(१०४) । . . . समस्यारं-

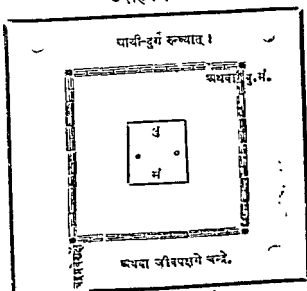
ज्ञारौ स्तंभक्ष प्रवेशेपि वा चन्द्रो जीवत्पक्षगः
 स्यात्प्रवेशे ॥ ६३ ॥ रुन्ध्यादुर्गं वा कुलौघेऽथ
 युद्धं व्यत्यासे नांतस्थसैन्यं विदध्यात् । दिक्ष्वी-
 ज्यारौ काव्यवक्रस्थसौम्यौ दुर्गे भंगं निर्दिशन्ति
 क्रमेण ॥ ६४ ॥

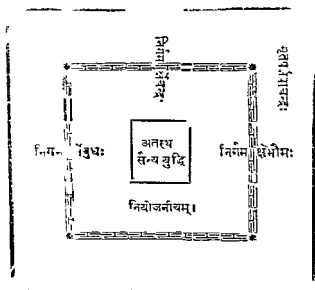
ज्ञो बुधः आरो भौमः । एतौ चेत्स्तंभनक्षत्रगतौ रतः ।
 प्रवेशकोणभेषु मध्ये कस्मिंश्चिद्वा स्याताम् । चन्द्रस्तु राहु-
 कालानलचक्रे वा जीवत्पक्षगानि नक्षत्राणि तेषां मध्ये कस्मि-
 श्चित्स्यात् प्रवेशे कोणनक्षत्रे वा स्यात्तदा दुर्गं रुन्ध्यात् ॥ ६३ ॥
 यायी स्वसैन्येनारिदुग्म् अकुलौघे अकुलगणे रुन्ध्यात् वेष्ट-
 येत् । अकुलौघश्च—भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, पूर्वा-
 फाल्गुनी, हस्त, स्वात्यनुराधोत्तरापाढा, धनिष्ठोत्तराभाद्र-
 पदा, रेवतीसंज्ञानि १२ भानि । प्रतिपदा, तृतीया, पंचमी,
 सप्तमी, नवम्येकादशी, त्रयोदशी, पंचदशष्टतिथयः । रवि,
 सोम, शनि, गुरु ४ वारा इति । अथ व्यत्यासे सति तु
 अन्तःस्थस्य स्थायिनः सैन्यं यायिना सह युद्धं विदध्यात् ।
 व्यत्यासश्चैवं बुधभौमौ स्तम्भक्ष न स्यातां न प्रवेशर्क्षे किन्तु
 निर्गमक्ष । चन्द्रो मृतगो न तु जीवत्पक्षगः न च प्रवेशर्क्षे ।
 किन्तु निर्गमर्क्षे कुलगणे च तदा स्थायी युद्धयेत् । दिक्षु
 प्राच्यादिषु चतसृषु दुर्गस्य ईज्यो गुरुः, आरो भौमः, काव्यः
 शुक्रः, वक्रस्थसौम्यो वक्रोबुधः एते चैत्क्रमेण स्पुस्तदा
 तस्मिन्दुर्गे भंगं दिशन्ति ॥ ६४ ॥

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् । (१०५)

‘ ऊपरके चक्रोंमें तो दोनों ओरकी सेना तथा किलेका भंग होना न होना निर्दिष्ट कियागयाहै । अब नीचेके चक्रोंसे कोटको घेरनेका तथा आई हुई सेनाको परास्त करनेके लिये आक्रमण करनेका समय सूचित किया जाताहै । ’ यदि बुध और मंगल स्तंभके नक्षत्रोंमें अथवा प्रवेशके नक्षत्रोंमें हों और चन्द्रमा जीवपक्षके नक्षत्रोंमें अथवा प्रवेशके नक्षत्रोंमें हो तो ऐसे समयमें यापी (चढाईकरके आनेवाला) राजा अपनी सेनासे किलेपर आक्रमणकरे । (१) अथवा “ अकुलमण ” जो ऊपर १० वें श्लोकमें कहचुकेहैं उसमें किलेपर आक्रमण करे (घेरलेवे) । (२) और इससे विपरीत अर्थात् बुध भौम तो निर्गमनक्षत्रोंमें हों और चन्द्रमा मृतपक्ष वा निर्गम नक्षत्रोंमें हो तो स्यायी (किलेका अधिपति) राजा आईहुई सेनाको परास्त करनेके लिये उपरोक्त समयमें अपनी सेनाको युद्ध करनेके लिये आज्ञा देवे । (३) अथवा “ कुलमण ” में युद्धका आरम्भ करे । (४) यदि पूर्वमें गुरु, दक्षिणमें कुज, पश्चिममें शुक्र और उत्तरमें वक्रा बुध हों तो यह निज निज दिशाका नाश करते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

उदाहरण ।



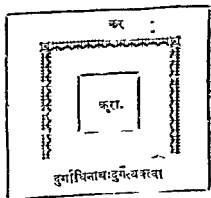


यत्र क्रूरस्तेन युक्तः शशी वा खण्डिस्तत्रैतत्पथे च प्रवेशः । क्रूराः स्तंभैर्क्षे यदा तस्तदानीं दुर्गे मुक्त्वा यांति दुर्गाधिनाथः ॥ ६५ ॥

यत्र प्राच्यादिदुर्गरेखास्थले क्रूरग्रहस्तेन ग्रहेण क्रूरेण युक्तः शशी चन्द्रो वा तत्र दुर्गे खण्डिः पतेत् । एतस्य क्रूरस्य मार्गे बाह्यसैन्यप्रवेशो दुर्गे भवेत् । यदा क्रूराः स्तंभनक्षत्रे अन्तर्मध्ये स्पुस्तदानीं दुर्गाधिनाथो ग्रहवशात् तद्दुर्गं त्यक्त्वा याति ततः पलायत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

कोटपर जिस जगह क्रूरग्रह हों, अथवा जिस जगह क्रूरयुक्त चंद्रमा हो तो (१) उसी जगहसे कोट खंडित होता है । अतः उसी मार्गसे प्रवेश होगा और यदि क्रूरग्रह स्तंभके नक्षत्रोंमें भीतर हों तो (२) दुर्गाधिनाथ किलेको छोड़कर भागजाता है ॥ ६५ ॥

उदाहरण ।

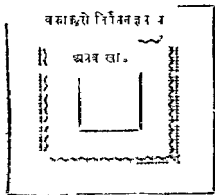


निर्गत्यर्क्षे बाह्यगे वक्रितश्चेत् ऋरः खंडि निश्चितं
तत्र कुर्यात् । वप्रस्थोतर्हन्ति मध्यं प्रवेशार्क्षे वकी
चेद्वन्ति बाह्यस्थसैन्यम् ॥ ६६ ॥

निर्गत्यर्क्षे निर्गमनक्षत्रे बाह्यगे बाह्यावर्तमाने निर्गमनक्षत्रे
वकी कूरग्रहो यदि स्यात् तत्र स्थाने निश्चितं खंडि कोटभंग
कुर्यात् । वप्रस्थः कोटस्थो वकी ऋरश्चेद्रवति तदा अतः
कोटमध्यं हन्ति नश्यति । मध्ये कोटमध्ये प्रवेशार्क्षे प्रवेशनक्षत्रे
चेद्वकी कूरस्तदा बाह्यस्थसैन्यं यायिसैन्यं हन्ति ॥ ६६ ॥

यदि बाहरके निर्गम नक्षत्रपर वकी मूरग्रह हों तो उत्तो जगहसे
कोटको खण्डित करते हैं । (१) और यदि कोटपर वकी मूरग्रह
हों तो कोटके भीतरवालोंका नाश करते हैं । (२) और जो कोटके
भीतर प्रवेशके नक्षत्रोंपर वकी मूरग्रह हों तो बाहरवाला सेनाका (३)
नाश करते हैं ॥ ६६ ॥

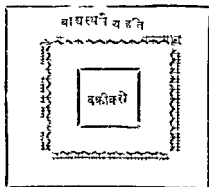
(१)



(२)



(३)



दुर्गे तदीशभजयोरिति कोटयोस्तु भगं चार्थं
दिशिं तत्रं लगन्तुं बाह्यां । आभ्यन्तरां बलपभोत्थित-
चक्रंदोषे सेनान्यमन्यमुपदिश्य दिशोप्यवंतुं ॥ ६७॥

दुर्गस्य एतदीशस्य दुर्गेशस्य च ये भे तयोरैशान्यादौ
लिखनेन इत्यमुना प्रकारेण उत्पन्ने कोटचक्रे तयोः प्रागुक्त-
प्रकारेण भगं विचार्य यस्यां दिशि भगसंभावना तस्यां

दिशि बाह्या यायिनो लगन्तु तत्र लग्नाश्च दुर्गे गृह्णन्तु । आभ्य-
तरा दुर्गाधिपास्तु स्वबलपो यः सेनापतिस्तस्य यद्गं तत उत्थितो
यः कोटचक्रदोषस्तस्मिञ्ज्ञाते अन्यसेनापतिम् उपदिश्य
नाम-पूर्वकं कृत्वा दिशोऽपि दुर्गज्ञा अवन्तु रक्षन्तु ।
एतदुक्तं भवति—एतद्ग्रन्थकृतोक्तप्रकारेण यायिस्थायिनावुभा-
वपि जयतः ॥ इति ॥ ६७ ॥

दुर्ग और दुर्गेश इन दोनोंके नामके नक्षत्रोंसे उपरोक्त रीत्यनुसार
दो चक्र बनाकर उसी उपरोक्त क्रमानुसार कोटका भंग होना निश्चय
करके उसी उसी जगहपर यायी (बाहरवाला) राजा अपनी सेनाको
लगावे तो किला टूटजाता है । और इसीप्रकार स्थायी (भीतरवाला)
राजा अपने सेनापतिके नक्षत्रसे विचार कर देखे आर किलेका भंग
होनाही प्राप्त हो तो उस सेनापतिको बदलकर दूसरा सेनापति नियम
को और जैसे दिशामें किलेका भंग आवे उन दिशाकी रक्षा करे ॥ ६७ ॥

इति समरसारे×कोटचक्रप्रकरणम् ।

× “ अथातः संप्रवक्ष्यामि कोटचक्रस्य निर्णयम् । स्तोत्रारिः कुक्षो यत्र भूयिष्यन्वपराज-
यम् ॥ १ ॥ यस्याभ्रयवलादेव राज्यं कुर्वति भूतले । विग्रहं चतुरासानु सीमास्थेः शत्रुभिः
सह ॥ २ ॥ विषमं दुर्गं घोरं चक्रं भीरुभयापहम् । वपिष्ठापिस्तु शोभादप्य रोद्राशालकमडि-
तम् ॥ ३ ॥ त्र्योली यस्य काला स्यात्परिखा कालरूपिणी । रणपतुं हताटोषं डिङ्गुलीयत्रयं वि-
तम् ॥ ४ ॥ सुरालैर्मुर्धरैः पाशः कुतसत्रैर्धनुः शरैः । संयुतैः सुभटैः शूरैरिति दुर्गं समारि-
तेत् ॥ ५ ॥ (इन वाक्योंसे विदितहोगा कि, प्राचीन कालमें कैसे कोट बनाये जातेथे ।
अस्तु) । उपरोक्तचक्रयोग्यफलमाह—“ युवशुक्लेन्दुजोबाध सरा शोभ्यमहा मताः । शन्य-
करादुमाहियाः केतुः मूरमहा मताः ॥ १ ॥ मूरभंगो जयः शोभ्यनिर्भयप्रपन्न मनम् ।”

सर्वतोभद्रचक्रमाह ।

पूर्वोदीचीर्लिखालीर्नयनयगणिताः कंदकोष्टेष्वथै-
शात्कोणेतोयस्वरान्वह्युद्धृतं इह दिगालिषु भान्यं-
तरा तु । नारीवर्णान्पुरोक्तान्वकहडमुखानंतरास्मा-
द्रूपादीन् खेटाच्चसंबधिवारैः सह लिख च तिथीन्
मध्यतो नंदिकादीन् ॥ ६८ ॥ ऐन्द्र्यादि मध्यभचतु-
ष्कवेधतो वेधमादिशेत्क्रमशः । घड्छां पण्ठां
धफ्ठां थझञमिति सर्वतोभद्रम् ॥ ६९ ॥

नय १० नय १० गणिता दशदशगणिताः पूर्वोदीचीः
पूर्वाश्च उदीच्यश्च पूर्वोदीच्यः ताः पूर्वोदीचीः पूर्वोत्तराः
आलीः पंक्तीर्लिख । अथानंतरं कंद ८१ कोष्ठेषु एकाशीति-
कोष्ठेषु ईशात् ईशकोणतः कर्णैः कर्णमार्गैः तोय १६ स्वरान्
पोडशस्वरान् अकारायौल्लिखेत् । अन्तरा मध्ये वह्यु-
द्धृतः कृत्तिकादितः सप्त सप्त नक्षत्राणि दिगालिषु दिक्पं-
क्तिषु पूर्वादिदिक्षु लिखेत् । पुनः पूर्वोक्तान् पूर्वोक्तनारी २०
वर्णान् विंशतिवर्णान् अवकहडमुखान् अस्मात् स्थानात्

—उद्धते युद्ध कोटचक्रं स्वरोदयी ॥ २ ॥ बाह्यमे मध्यमेतस्याः कूरा हानिकरा मताः ।
बाह्यमे मध्यमे तस्याः सौम्या विजयमादिशेत् ॥ ३ ॥ दुर्गमध्ये गते सूर्ये जलदोषः प्रजायते ।
चंद्रे भयः कुजे दाहो बुधे बुद्धिवला नराः ॥ ४ ॥ वाक्मती दुर्गमध्यस्थे मुनिश्च प्रचुर जलम् ।
चलचित्तनराः शुके मृत्युरोगी शनैश्चरे ॥ ५ ॥ राहो मध्यगते दुर्गे भेदभक्तो महद्भयम् ॥ केतो
मध्यगते तत्र विषदानं गदाधिपं ॥ ६ ॥ एते कोटबालेपि ज्ञयम् ॥

अधः अन्तरा मध्ये लिखेत् । चतुर्दिक्षु व सव्येनोच्यते । पूर्वस्यां दिशि सप्तसु कोष्ठेषु कृत्तिकादीनि सप्तनक्षत्राणि लेख्यानि । तदधः पंचसु कोष्ठेषु अवकहडान् लिखेत् । पुनः दक्षिणस्यां दिशि मघादीनि सप्तनक्षत्राणि लेख्यानि । तदधः पंचसु कोष्ठेषु मटपरता लेख्याः । पुनः पश्चिमायां दिशि सप्तसु कोष्ठेषु अनु-
 राधातः सप्त नक्षत्राणि लेख्यानि । तदुपरि नयभजखा लेख्याः पुनरुत्तरस्यां दिशि धनिष्ठातः सप्त नक्षत्राणि लेख्यानि । तदुपरि गशदचला लेख्याः । तदंतरा (मध्ये) वृषादीनि त्रीणि, सिंहा-
 दीनि त्रीणि, वृश्चिकादीनि त्रीणि, कुंभादीनि त्रीणि, पूर्वादि-
 दिक्षु लिखेत् । पुनः मध्यतः नन्दादितिथीन् लिखेत् । अंकै-
 सह खेटात्सम्बन्धिवारैः सह खेटानां अचः स्वरास्तत्सम्ब-
 न्धिनो ये वारास्तैः सह तिथीन् लिखेत् । रविभौमयोः अकारः
 स्वरस्तस्य वारौ रविभौमौ नन्दायां लेख्यौ । बुधचन्द्रयोः इका-
 स्वरस्तत्सम्बन्धिनौ वारौ बुधचन्द्रौ भद्रायां लेख्यां । गुरोः स्वर-
 उकारस्तस्माद्गुरुर्जयायां लेख्यः । शुक्रस्य एकारस्तस्माच्छुक्रो-
 रिक्तायां लेख्यः ॥ ६८ ॥ ऐन्द्र्यादिमध्ये यद्भ्रचतुष्कं
 नक्षत्रचतुष्टयं तस्य वेधतः क्रमात् घडछां, पणठां, धफडां,
 थझजां वर्णानां वेधमादिशेत् । तदेवाह—आर्द्रावेधे सति घडछा
 विद्धयन्ते, हस्तवेधे पणठा विद्धयन्ते, पूर्वाषाढावेधे धफडा
 विद्धयन्ते, उत्तराभाद्रपदावेधे थझजाः विद्धयन्ते इति सर्वतोभद्रं
 वेधकृत् ज्ञेयम् ॥ ६९ ॥

पूर्वसे और उत्तरसे आरंभ करके दश दश रेखा खींचनेसे ८१ कोठे बन जाते हैं । उन कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आदि लेकर कोणों कोणोंके कोष्ठाम 'अआइई' आदि सोलह स्वर लिखे । और ऊपर ऊपरकी चीतरफकी दिक्पंक्तियोंके जो सात सात कोठे हैं उनमें कृत्तिकादि अट्ठाईस नक्षत्र लिखे । इनके नीचेके चीतरफके पांच पांच कोठोंमें उपरोक्त अषट्क-मठपरत-नयमजत्व-गशदचळ-यह बीस वर्ण लिखे । और इनके नीचे जो तीन तीन कोठे हैं उनमें वृषादि बारह राशि और ग्रह लिखे । इनके नीचे जो एकएक कोठे हैं उनमें स्वर-संबंधी वारों सहित नन्दादि तिथि लिखे ॥ ६८ ॥ और इसके अतिरिक्त पूर्वादि दिशाओंमें जो बीच बीचके भवतुष्क हैं उनमें क्रमसे पूर्वकेमें घड्ड, दक्षिणकेमें पणठ, पश्चिमकेमें धफठ और उत्तरकेमें थज्ञज लिखे तो वेधोषयुक्त नीचे लिखेअनुसार " सर्वतोभद्रचक्र " बन जाता है ॥ ६९ ॥

प्रथमाद्यभस्थखेटो विध्येत्कोणस्थितानचैश्चतुरः ।

तिथिर्मपि पूर्णां न शुभंः क्रूरंजवेधःशुभंःशुभंजः॥७०॥

प्रथमाद्यभस्थखेटः कोणस्थितान् चतुरः अचः विध्येत् । यथैशान्यां प्रथमं नक्षत्रं भरणी तदग्र्यमं कृत्तिकास्थो ग्रहः ईशानकोणस्थान् अ, उ, लृ, ओ स्वरान् पूर्णा तिथींश्च विद्ध्येत् । आग्नेय्याम् आर्द्रामघास्थो ग्रहः आग्नेयस्थान् आ, ऊ, लृ, औ स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्ध्येत् । नैर्ऋत्यां विशाखानुराधास्थो ग्रहः नैर्ऋतिस्थान् इ, ऋ, ए, अं स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्ध्येत् । वायव्यां श्रवणधनिष्ठास्थो ग्रहः वायव्यस्थान् ई, ऋ, ऐ, अः स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्ध्येत् । तत्र क्रूरवेधः न शुभः, शुभरुतवेधस्तु शुभदः ॥ ७० ॥

कोणस्थ प्रथमनक्षत्र-और अश्र्य (आगेका) भ नक्षत्र इन दोनों नक्षत्रोंपर कोई ग्रह स्थित हो तो कोणस्थ चारों स्वर्गोंको तथा पूर्णा तिथिको वेधताहै । यथा-ईशान कोणमें प्रथम नक्षत्र भरणी और अश्र्यभ कृत्तिकापर कोई ग्रह हो तो उस कोणके अ, उ, लृ, ओ इन चारों स्वर्गोंको एवं पूर्णा तिथिको वेधता है । अग्निकोणमें ऐमेही आर्द्रा, मघापर कोई ग्रह हो तो आ, ऊ, लृ औ और पूर्णातिथिका वेधताहै । नैऋत्यमें विशाखानुराधास्थ ग्रह इ, कृ ए, अं सहित पूर्णको वेधता है और व यज्यमें श्रवणघनिष्ठास्थ ग्रह ई, कृ, ए, अः इन स्वर्गोंको और पूर्णातिथिको वेधता है । यह वेध यदि कृ १ ग्रहोंका हो तो अशुभ और साम्य २ ग्रहोंका हो तो शुभ होताहै ॥ ७० ॥

जा	कृ	रो	गृ	पङ्क ओ	पु	पु	रु	आ
भ	उ	ष	ध	क	ह	ड	क	ग
श्रिव	लृ	लृ	वृष	मिथुन	कर्क	लृ	म	पु
रु	रु	मम	ओ	नवरा भुज	लौ	सिंह	ट	ट
लृ उ	व	मीन	रिलो रु	पूर्णा श	मङ्ग चतु	कृगा	रु	रु शु
पू	श	कुम्भ	जः	जया रु	ज	तुल	र	वि
श	ग	रु	मकर	धन	पृथ्वि	रु	रु	रु वि
ध	रु	रु	ज	भ	रु	रु	रु	वि
ई	भ	अभि	उ	पू प्रकट	मू	जे	पु	रु

१ शन्यैराहुकेत्वात् रु । २ तथा शुभाः । नृस्यतो बुध क्षीणचन्द्रोपि कुरी ॥ ३ यदि दा चरको "सप्तारचक्र" वा "सप्तारदीपकचक्र" कहा जाय

वक्रशीघ्रग्रहवेधमाह ।

वक्री दक्षं कर्णगत्यर्थं वामं शीघ्रं विध्येदीक्षतेग्र्ये
समस्तु । नित्यं वक्रौ राहुकेतुं इनेन्दुं शीघ्रौ नित्यं
दृग्व्यधौ तुल्यरूपौ ॥ ७१ ॥

वक्री शुभोऽशुभो वा कर्णगत्या कोणरीत्या दक्षं स्वपश्चा-
द्भागं विध्येत् । वक्रगतित्वं च सूर्यः स्वस्थानात्पंचमे पष्टे वा
स्थाने स्यात् । अथ शीघ्रगतिग्रहो वामं स्वाग्रिमभागं कोण
रीत्यैव विध्येत् । शीघ्रगतित्वं चार्के द्वितीयस्थानगे समः सम-
गतित्स्तु ग्रहः अग्र्ये स्वसम्मुखे नक्षते । अतः सम्मुख एव तद्वृष्ट-
रूपो वेधः । अथ नियतशीघ्रग्रहानाह-नित्यमित्यर्द्धेन । राहुकेतु
नित्यं सर्वकाले वक्रावतोऽनयोर्दक्ष एव कर्णगत्या वेधः । रवीन्दु
नित्यं शीघ्रगती अतोऽनयोश्च वामवेधः । दृग्व्यधौ दृष्टिवेधौ
तुल्यरूपौ सर्वकाले समानफलावेव नान्यथा भवतः ॥ ७१ ॥

वक्री ग्रह दक्षिण कर्णगति (काननी तर्फ होकर तिर्था दृष्टि) से
और शीघ्रगति ग्रह वामकर्णगतिते वेधता है और सम (न वक्रौ न
शीघ्र) ग्रह सम्मुख वेधता है ।—राहु केतु नित्य ही वक्रौ रहतेहैं और
सूर्य चंद्र नित्यही शीघ्र रहतेहैं अतएव राहु केतु सदैव दक्षिण कर्ण-
गतिते और सूर्य चंद्रमा सदैव वाम कर्णगतिते वेधतेहैं ॥ ७१ ॥

उद्वेगार्थविनाशरोगमृतिदा विध्यन्त एकार्दयो वर्णं
हानिरुद्धौ भ्रमोऽचि तु रूजोविद्धे तिथौ भीरपि ।

—तो कोई अत्युक्ति न होगी । क्योंकि इसका मपटन अर्द्धांशो नक्षत्रोसे हुआ है और
ससारके याव-मात्र पदाधिके नामाक्षर अर्द्धांशो नक्षत्रोके अन्तर्गत है, अत नक्षत्रवेधातुसार
वस्तुमात्रका क्षयोद्भव विदित हो सकता है ।

राशौ विघ्नततिश्च पंचसु मृतिविध्यञ्ज इज्यः सितः ।
प्रज्ञां सर्वसुखं रतिं विदधते वक्रा अतीष्टा इमे ॥७२॥

एकादयो ग्रहा विध्यन्त उद्वेगार्थविनाशरोगमृतिदा भवन्ति ।
एकपापग्रहविद्धे, नरे उद्वेगः, द्विग्रहवेधेनार्थविनाशो द्रव्यहानिः,
त्रिग्रहवेधेन रोगः, चतुर्ग्रहवेधेन मरणं भवति । वर्णे अक्षरे पाप-
ग्रहविद्धेन हानिःद्रव्यहानिःबलहानिःपक्षहानिर्वा,—उडौ नक्षत्रे
पापविद्धे भ्रमः चित्तभ्रमणं भवेत् । अचि स्वरे पापविद्धे रुजः
रोगो भवति । तिथौ पापविद्धे भीः भयं स्यात् । राशौ पापविद्धे
विघ्नततिः विघ्नपंपरा भवति । पंचसु वर्णनक्षत्रस्वरतिथिराशिषु
एककाले विद्धेषु मृतिर्मरणं भवति । ज्ञः बुधो वेधेन प्रज्ञां बुद्धिं
ददाति, ईज्यो गुरुर्वेधेन सर्वसुखं ददाति, सितः शुक्रो वेधेन
रतिं प्रीतिं ददाति । इमे शुभग्रहाश्चेद्वक्राः विध्यन्ते तर्हि
अतीष्टाः अत्यन्तश्रेष्ठाः ॥ ७२ ॥

यदि एक पापग्रह वेधता हो तो उद्वेग, दो वेधते हों तो अर्थनाश,
तीन वेधते हों तो रोग और चारग्रह वेधते हों तो मृत्यु होती है । वर्ण
(नामाक्षर) का वेध हो तो द्रव्यनाश, नक्षत्रवेध हो तो भ्रम, स्वरवेध हो
तो रोग, तिथिवेध हो तो भय और राशिवेध हो तो विघ्नपर विघ्न
होता है और यदि इन पांचोंकाही वेध हो तो मृत्यु होती है + । यदि
वेधकर्ता बुध हो तो बुद्धि, गुरु हो तो सर्वसुख और शुक्र हो तो

+ इस वेधसे मनुष्योंका सुख, दुःख, हासि, लाभ, रोगका हास, बुद्धि और चापन्मात्र
वस्तु पदार्थोंका क्षय उत्पत्ति एव व्यापारिक वस्तुओंका महर्ष समर्ष (तेजी मदी) अदि
सब कुछ बेखा जा सकता है । इसीसे यह ' सत्कारवक्र ' कहा जा सकता है ।

रति (स्त्रासंभोग) की प्राप्ति होती है और यदि यह बकी हों तो अत्यन्त अच्छे होते हैं ॥ ७२ ॥

कूरा वक्रेऽतीव दुष्टा रविः स्याद्यद्राशौ सा दिक्स-
दिश्यास्तमेति । प्राच्या ईशाशास्थिताश्च क्रैमोऽयं
सर्वाशासु ज्ञायतां बुद्धिमैद्भिः ॥ ७३ ॥

कूरा वक्रे पापग्रहाः वक्रिणः अतीव दुष्टाः स्युः । रवि-
र्घ्यस्मिन्नाशौ स्यात् यदिग्लिखितेषु राशिषु स्यात् । यथा
प्राच्यां वृषमिथुनकर्कटा लिखितास्तेषां मध्ये चेदेकस्मिन्नाशौ
तिष्ठेत्तदा सा प्राच्यादिदिक् सदिश्या 'दिशि भवं दिश्यं'
'नक्षत्र, स्वर, वर्ण, राशि, तिथिवारादि तेन सह वर्तत इति'
सदिश्या आशा नक्षत्राद्यैर्युक्ता सा दिग्स्तगा स्यादित्यर्थः ।
विदिक्षु ये स्वराद्यास्ते कथमस्तगता ज्ञेया इत्यपेक्षायां विदिशां
दिक्ष्वेवांतर्भावमाह—प्राच्या इति । ईशाशा ऐशानी तत्र स्थिताः
अत्र प्राच्याः प्राचीदिग्गता ज्ञेयाः । आग्नेयीस्था दक्षिणदिग्गताः
ज्ञेयाः । एवं नैर्ऋतिस्थाः प्रतीचीगताः । वायव्यस्था उदीची-
गता ज्ञेयाः ॥ ७३ ॥

कूरग्रह बकी होकर वेध करते हों तो अत्यन्त दुष्ट होते हैं ।-सूर्य
वृषादि जिस राशिपर स्थित हों और वह राशि जिस दिशामें हो तो
उस राशिके तर्फका दिशा एवं स्वर, वर्ण, नक्षत्रादि सब अस्त
होते हैं । (१) और कोणस्थ स्वरवर्णादि उक्त दिशाके साथ अस्त
होते हैं । यथा ईशानकोणस्थ पूर्वमें, अग्निकोणस्थ दक्षिणमें, नैर्ऋत्य-
कोणस्थ पश्चिममें और वायुकोणस्थ उत्तरमें मानकर अस्त समझे
जाते हैं । (२) ॥ ७३ ॥

उदाहरण ।

यथा सूर्य वृषरा शिपर है तो पूर्वादिशाके स्वर वर्ण नक्षत्र राश्यादि मन्व अस्त हैं । अतः अस्त दिशाका फलभी नीचे लिखे अनुसार होता है ॥ ७३ ॥

अस्ताशास्त्र्याजाद्यैः क्रूरव्यधवशात्फलं वाच्यम् ।

उदिताशास्त्र्यैः सौम्यव्यध इव फलं मादिशेच्छ्रेष्ठम् ७४ ॥

अस्ताशा सूर्याक्रान्ता दिक् तस्यां स्थितैरजाद्यैः स्वरवर्ण-
क्षतिधिवारैः क्रूरग्रहव्यधवद्द्रुष्टफलं वाच्यम् । उदिताशा सूर्या-
क्रान्तदिग्व्यतिरिक्ता तत्र स्थितैः स्वराद्यैः सौम्यग्रहवच्छ्रेष्ठं
फलम् अस्ताशास्थाः सत्फला अप्यसत्फलाः । उदिताशास्था-
स्त्वसत्फला अपि सत्फला इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

अस्त दिशामें स्थित स्वर्गादिकोंका क्रूरवेधकी भांति नेष्टफल—और उदित दिशामें स्थित स्वरादिकोंका सौम्यवेधकी भांति श्रेष्ठ फल कहना चाहिये अर्थात् शुभ फल देनेवाले स्वर जो वर्णादिहैं वे यदि अस्त दिशामें हों तो अशुभ फल देतेहैं और अशुभ फल देनेवाले स्वरवर्णादि उदित दिशामें हों तो शुभ फल देते हैं ॥ ७४ ॥

हानी रुक्मलं होपि पीडितं इह स्याज्जन्मभेऽस्मान्नये

कर्मासिद्धिरथो भिदां चयमिते द्रव्यक्षयैः स्थाजये ।

गौरे^{१३} देहरुजैः शरैः सुखहती रंजोथं देशोडुनि^{१४}

क्षुण्णे जात्यांभिवेकयो रंपि तयोस्तत्तद्रयनिर्दिशेत् ७५

इह सर्वतोभद्रे जन्मनक्षत्र पीडिते क्रूरग्रहविद्धे हानिर्द्रव्यादेः,
रुक् रोगः, कलहो मित्राद्यैः, एतानि फलानि भवन्ति । अस्मा-
ज्जन्मभान्नये १० दशमर्क्षे पीडिते कर्मासिद्धिः कर्म यत्कर्तु-
मिच्छं तस्यासिद्धिः । अथो तत एव चय १६ मिते षोडश-

संख्याके विद्धे भिदाभेदः इष्टवर्गेण सह । जये १८ अष्टादशसंख्ये
तु विद्धे द्रव्यक्षयः । गौरे २३ त्रयोविंशतितमे विद्धे देहरुजः ।
शरे २५ पंचविंशतिमे विद्धे सुखहतिः सुखनाशः ।

अथ राज्ञो देशोद्भुनि अवकहडचक्रे यत्तु देशनक्षत्रं तस्मिन्
विद्धे । तथा जात्यभिपेकयोः जातिः क्षत्रियत्वादिः तद्धं
अवकहडचक्रजम् । एतच्चक्रजमेव यद्राजाभिपेककालीननाम-
नक्षत्रमेतदभिपेकभम् । एतेषु विद्धेषु तत्सम्बन्धिनां देश-जाति-
राज्यानां भयं निर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

इस सर्वतोभद्रमें यदि जन्मनक्षत्र वेधा गया हो तो हानि, रोग,
और क्लेश यह होते हैं । यदि जन्मर्शसे दशवां वेधित हो तो कर्मकी
अभिद्धि होती है । यदि जन्मनक्षत्रसे सोलहवां नक्षत्र वेधित हो तो भेद
(परस्परभेद-अविश्वास) होता है । यदि अठारहवां वेधित हा तो द्रव्य-
क्षय होता है । तेईसवां वेधित हो तो देहमें रोग होता है और पञ्चसिवां
नक्षत्र वेधित हो तो सुखहानि होती है ।

यदि राजाके देश हा अथवा राज्याभिपेकका वा किसी जातिकी
नक्षत्र विद्ध हो तो उस उम देश, राज्य वा जातिको भय होता है ।
यह सब नाम नक्षत्र पूर्वोक्त अवकहडचक्रसे देखलेने चाहिये ॥ ७५ ॥

इति समरसारे सर्वतोभद्रप्रकरणम् ❀ ।

* विद्यात सर्वतोभद्र चक्र त्रैलोक्यदीपनम् । यस्मिन्नृशे स्थितः श्वेतस्ततो
वेधत्रय भवन् । ग्रहदृष्टिवर्गेनात्र वामसम्मुखदक्षिणे ॥ १ ॥ भुक्त भोग्य तथा
फात निद्ध करप्रदेण भम् । शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीय प्रयत्नतः ॥ २ ॥ सूर्यमुक्ता
उदीयन्ते सूर्यप्रस्तास्तगामिनः । ग्रहा द्वितीयगे सूर्ये स्फुरद्दिवाः कुजादयः ॥ ३ ॥
समा तृतीयगे ज्ञेया मन्दा भानो चतुर्थगे । वका स्यात्पंचपष्टेऽर्के त्वतिवन्नष्ट-
सप्तमे ॥ ४ ॥ नवमे दशमे भानो जायते कुटिला गतिः । द्वादशीकादसे सूर्ये
भजते शीघ्रता पुनः ॥ ५ ॥ अदप्रता पुनर्लोकं प्रजत्यर्कपता ग्रहाः । अवर्णादि-

✓ ऋणधनशोधनमाह ।

साध्यांकां अकठवादयस्ततैतुं नगभूभानुनिन्नग दातां ।
रुमननरयनभवर्गाःसाधके ऋणमधिकशेषतो दातां ७६

साध्यस्य सम्बन्धयाह्यस्य दासदासीशिष्यादेर्नामसम्बन्धि-
नोंकाः साध्यन्ते । तत्रैवं—त६, त६, तुं६, न०, ग३, भू ४,
भा४,नु०,नि०,न०,गा ३, अकठवादयस्तत्सम्बन्धिनश्चाङ्काः
साध्यनामाक्षरस्वरसम्बन्धिन एकीकृता दा ८ ता अष्टभक्ता
यदि शेषांकः साधकनामाक्षरांकसंख्याष्टभागवशिष्टांकादूनस्तदा
साध्यस्य साधकः ऋणप्रदः । अधिकं तु गृह्णाति । साधकः
साध्यादृणमिति भावः । साधकांस्तु तत्र वर्गास्त एव तदंकास्तु
रु२, रु२, म५, न०, न०, र२, य१, न०, भ४, व४, गाः३,
एते एकादश । अत्रापि साधकनामाक्षरसम्बन्धयंका एकीकृता
अष्टभक्ताः साध्याङ्कादधिकशेषे साध्यस्य ऋणप्रदः साधकोऽल्पे
तु गृह्णाति ॥ ७६ ॥

ग्याह कोठोमें त ६-त ६-तुं ६-न०-ग ३-भू ४-भा ४-नु०-
नि०-त्र०-गा ३ यह साध्यके अंक लिखकर इनके नीचे अकठवादि
अर्थात् ' अआ ईउऊएऐओभ्रोअं कखगघङ चउचझञ टठडढण
तथदधन पफबभम यरलव शपःह-पहलिसै औा ऐतेही र २-र २-म-
६-न०-न०-ग ३-य १-न०-भ ४-र ४गा-३-यह साधकके अंक

—स्वरो द्वी द्वायेच्येपे द्वयोर्ध्वयः । स्वगुणात्मनो वेधयानुस्वारविसर्गयोः ॥ ६ ॥ बयो
अतो पतो चैव द्वेयो द्वयो परस्परम् । एतेन द्विनयं द्वेयं शुभाशुभरुग्यये ॥ ७ ॥
प्रदनकाले भवेद्विद्ध यत्प्रम क्रूरवर्चः । तद्दुष्ट शोभन सौम्यैर्निर्धनैर्धनफलं नरम् ॥ ८ ॥
संज्ञतं नामैर्प्रामो दुर्घं देवानयः पुग्म् । क्रूरैरुभयतो विद्ध चिनःयति न संशयः ॥ ९ ॥
तेलं भाष्टे रसो धान्य गज्यादि चतुष्टयम् । गर्वं मह्यंता यानि यत्र क्रूरो
व्यवस्थितः ॥ १० ॥

लिखकर इनके नीचेभी वही अकठवादि लिखे तो 'ऋणधन' चक्र बनजाता है। इस चक्रसे साध्य और साधकके नामाक्षरोंकी संख्या लेकर उसमें आठका भाग दे तो जिसका शेष अधिक बचे वह ऋण-प्रद होता है ॥ ७६ ॥

उदाहरण ।

जैसे—'राम सीता' का धनर्ण देखना है तो यहां राम साधक और सीता साध्य है। अतएव साधक रामनामके २०—आ २—म ५—अ २ इन अंकोंका योग ९ है और साध्य-सीतानामके स०—ई०—त ३—आ ६—अंकोंका योग १६ है। इन ९।९ दोनोंमें आठको भाग देनेसे १।१ बचता है। अतएव राम-सीता-दोनों समान हैं।

साधक वह कहा जाता है जो किसी व्यक्तिविशेष वा वस्तुविशेषसे अपना कार्य साधन करे और साध्य वह कहाजाता है जो साधकके कार्यविशेषमें उपयुक्त हो यथा स्वामी साधक, सेवक साध्य,—रति साधक, पत्नी साध्य—गुरु साधक, शिष्य साध्य इत्यादि इत्यादि ॥७६॥

ऋणधनसाधनचक्रम् ।											
ना	या	न	त	न	न	ग	भू	भा	नु	नि	निगा
		६	६	६	०	२	४	४	८	०	०
		श	आ	इ	इ	उ	ऊ	ए	ए	ओ	ओ
		क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
		ठ	ड	ड	ण	त	थ	द	ध	न	प
		य	भ	भ	य	र	ल	व	श	ष	स
साम		६	६	५	०	०	०	०	०	५	५
साम		०	२	५	०	०	०	१	०	५	५

आतुरसाध्यासाध्यादिप्रश्ने तज्ज्ञानमाह ।

कौट्टाद्वैतोऽक्षुं च विमर्गनपुंसकोनेष्वंकास्तुलारिभ-
मतीभृगुकानकाः म्युः । इतातुराह्वयतदैक्यदभक्त-
'शेषे जीवेद्दो' समधिकेप्रियैते समाने ॥ ७७ ॥

कात् ककारात्-ठात् ठकारात्-वात् वकारात्-वर्णा
 लेख्याः । विसर्गनपुंसकोनेपु-विसर्गः अः, नपुंसकाः ऋऋलृलृ
 एतैः व्यतिरिक्तेषु, अधः कठवाद्यो वर्णा लेख्या वर्णोपरि तु ६-
 ला ३-रि २-भ ४-ल ७-ती ६-भृ ४-गु ३-का १-न ०-
 काः १-अंकाः स्युः लेख्याः भवन्ति । दूतः पृच्छकः आतुरो
 रोगी तयोः आह्वयं नाम तस्य अंकैक्यं पृथक् पृथक् कर्तव्यम्
 द ८ भक्तम् अष्टभक्तं, दूतांशुशेषाद्दिनो रोगिणोके समधिके
 अधिके सति रोगी जीवेत् । दूतांशुशेषाद्रोगिणोके समे होने
 च सति रोगी म्रियते ॥ ७७ ॥

विसर्ग (अः) और नपुंसक (ऋऋलृलृ) इनके अतिगिक्त और
 जो-अकठवादि स्वर व्यंजन हैं इनको तु ६-ला ३-रि २-भ ४-स
 ७-ती ६-भृ ४-गु ३-का १-न ०-का १-इनके नीचे लिखे तो
 “ आतुरसाध्यासाध्यज्ञानचक्र ” बन जाता है । इसमें दूत (पृच्छक)
 और आतुर (रोगी) के नामाक्षरोंकी संख्या लेकर उनमें पृथक्
 पृथक् आठका भाग देनेसे दूतके शेषसे रोगीका शेष सम वा न्यून
 हो तो रोगी मरजाता है ॥ ७७ ॥

उदाहरण ।

यथा देवदत्त तो रोगी है और इसके अच्छे होने न होनेके विषयमें
 यज्ञदत्त पूंउता है तो-रोगी देवदत्तका नामांक (द ४-पृ ४-व ४-अ
 ६-द ४-अ ६-त ७-त ७-अ ६-) संख्यायोग ४८ । और दूत वा
 पृच्छक यज्ञदत्तका नामांक- (य ४-अ ६-ग ३-ज ०-अ ६ द ४-अ
 ६-त ७-त ७-अ ६-) संख्यायोग ४९ है । इनमें आठका भाग
 दिया तो दूत ०- । रोगी ३-शेष रहा । यह दूतके शेषसे रोगीका शेष
 अधिक है अतएव रोगी देवदत्त जीवेगा ॥ ७७ ॥

आतुरसाध्यासाध्यज्ञानचक्रम् ।										
तु ६	ला ३	रि २	भ ४	स ७	ती ६	म ४	गु ३	का १	ने०	क ९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	ॐ
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ड	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

रुग्णप्रश्न एव विशेषमाह ।

प्रश्नाज्झलां च प्रमितिः कयुक्ता भूयो रनिघ्नां लहं-
 तार्थशेषे १ के जीवितं २ खे निरुजो मृतिर्न ३ भवेच्च
 तिथ्यां मरणाभिधायाम् ॥ ७८ ॥

प्रश्नस्य प्रश्नवाच्यस्य दूतोक्तस्य येऽचो हलश्च तेषां प्रमितिः
 प्रमाणं के १ नैकेन युता । भूयः पुनः रे २ ण द्वाम्यां गुणिता ।
 ले ३ न त्रिभिर्भक्ता तच्छेषं च यदैकं तदा रुग्णस्य जीवितं
 निर्दिशेत् । द्वयोस्तु शिष्टयोर्नितरां रोगं विनिर्दिशेत् । ने०
 शून्ये तु शेषे तन्मरणं वदेत् । तदपि वर्णस्वरवशाया मृत-
 तिथिस्तस्यामेव वदेत् ॥ ७८ ॥

प्रश्नके समय प्रच्छक जो कुठ है उस कथनके अच् और हल्की
 उपरोक्तरूपानुसार जितनी संख्या हो उसमें १ मिलाकर दोसे गुणादे
 और तीनका भागदे याद १ शेष बचे तो रोगी जीता है । २ बचे तो
 रोग उठता है । और ० बचे तो रोगी मरजाता है । ऐसे ही वर्ण-
 स्वरके वशसे मृततिथिका विधान करे । अर्थात् वर्णस्वरसे जो मृतस्वर
 हो उसी स्वरकी तिथिको मरणातिथि जाने ॥ ७८ ॥

उदाहरण ।

जैसे देवदत्तने—यज्ञदत्तके विषयमें कहा कि “यज्ञदत्त कब अच्छा होगा” तो इस कथनके अक्षरोंके संख्यां क्रयोग ९९ में एकयुक्त १०० करके दोसे गुणा किया तो २०० हुए। इनमें तीनका भाग दिया तो २ शेष रहा। अतएव—यज्ञदत्तके रोग बढ रहा है।

यदि यह जानना हो कि, यज्ञदत्त किस तिथिको मरेगा तो “मरणभिधायी” के अनुसार यज्ञदत्तका वर्णस्वर उकार है और उकारसे मृत्युस्वर इकार है अतएव इकारकी जया ३।८।१३ तिथि होनेसे यज्ञदत्त जया तिथिमें मरेगा। इसी प्रकार मृतपुरुषोंकी भी मृत तिथि विदित होती है ॥ ७८ ॥

इति समस्तसारे ऋणधनातुरसाध्यासाध्यादिप्रकरणम् ।

भविष्यदर्थसूचकं छायानरं पश्यति तत्प्रकारमाह ।
 प्रातः पृष्ठगते र्वावनिमिपं छायां गले स्वां चिरं
 दृष्ट्वा नयनेन यत्सिततरं छायानरं पश्यति । तत्कर्णा-
 मकरास्यपार्श्वहृदयाभावेक्षणेर्काश्वदिग्भूराभाक्षि-
 सभाः शिरोविर्गमतो मासांस्तु पट्टं जीवति ॥ ७९ ॥

प्रातःकाले मेघायैरनाच्छादिते रवौ पृष्ठगते अनावृत्ते स्थले स्थित्वाऽर्कं पृष्ठभागे कृत्वा प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन् । अनिमिपं—निमेषशून्ये चक्षुषी कुर्वन्सन् स्वां स्वकीयां चिरं चिरकालं गलस्थले दृष्ट्वा वादशी अनिमिपे एवनेत्रे ऊर्ध्वप्रदेशं नयन् । सिततरम्—अतिशयेन श्वेतं छायानरं छायापुरुषं पश्यति । एवं प्रकारेण शरदादिसितविमलरात्रिषु छायापुरुषो दृश्यते एवं दृष्टे पुरुषे फलमाह—वदिति । तस्य छायानरस्य कर्णाभावदर्शने द्रष्टा अर्कवर्षाणि द्वादशवर्षाणि जीवति । द्रष्टा अंशकरद्वयास्यपार्श्व-रदयै-

विना छायापुरुषदर्शने क्रमादायुर्वर्षाणि सप्त ७, दश १० एक १
त्रि ३, द्वि २ संख्यानि जीवतीति सम्बन्धः । शिरोविगमतः
अशिरस्कच्छायापुरुषदर्शने षण्मासान् जीवतीति श्लोकार्थः ।
अत्र स्वसंकेतितवर्णलक्ष्यां संख्या परित्यज्य अर्कादिसंज्ञाग्रहो
लोकप्रसिद्धिमाश्रित्य ॥ ७९ ॥

प्रातःकालके समय सूर्यको पीठदेके पश्चिमाभिमुख खड़ा होकर
आनिमिष (पलक न मिलें ऐसी) दृष्टिसे अपनी छायाको गलस्यलके
पास बहुत देरतक देखे । फिर नेत्रोंको सहसा ऊँचे लेजाय अर्थात्
आकाशको देखे तो एक अत्यन्त सफेद छायाका पुरुष दीखत है ।

उस छायापुरुषके यदि कान न दीखें तो चारह वर्षतक, अंन, कंठे)
न दीखें तो सात वर्षतक, हाथ न दीखें तो दश वर्षतक, मुख न दीखे
तो एक वर्षतक, पाशू (पांशू) न दीखें तो तीन वर्षतक, हृदय न दीखे
तो दो वर्षतक, और शिर न दीखे तो छः महाने पर्यंत छायापुरुषको
देखनेवाला मनुष्य जीवित रहता है ॥ ७९ ॥

अत्रैव विशेषमाह ।

हृद्रंभ्रहृष्ट्यां मुनिसंख्यमासान् द्विद्दृष्टौ तु मृति-
स्तदैव । सम्पूर्णदृष्टौ तु न वर्षमध्ये रोगो मृतिर्नैति
वदन्ति सत्यम् ॥ ८० ॥

छायापुरुषस्य हृदये चेद्रंभ्रे दृश्यते तदा सप्तमासान् जीवति
शरीरद्वयं चेद् दृश्यते छायापुंसः तदा तदानीमेव मरणं जानी-
यात् सम्पूर्णे तु छायापुरुषे दृष्टे वर्षमध्ये रोगो मरणं च न
भवेदिति सत्यं ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

यदि उस छायापुरुषके हृदयमें छिद्र दीखे तो सात महाने पीछे और
दो शरीर दीखें तो उसी समय मृत्यु होती है । यदि छायापुरुष सांगी-

पांग सम्पूर्ण दीखे तो एक वर्ष किमी प्रकारका रोग वा मृत्यु कुछ नहीं होना है । यह सत्य कथन है ॥ ८० ॥

छायापुरुषप्रसंगेन शकुनान्तरमाह ।

स्नातस्य पूर्व कर्णादेः शोषे प्रागुक्तवत्फलम् ।

सर्वागार्द्रस्य हृच्छोषे षण्मासाभ्यन्तरे मृतिः ॥८१॥

स्नातस्य कृतस्नानमात्रस्य पुंसः कर्णादेः कर्णासहस्तमुख-
पार्श्वहृदयादीनां प्रथमतः इतरांगेभ्यः पूर्व शोषे पूर्वश्लोकोक्त-
फलं योज्यम् । यथा कर्णशोषे द्वादश वर्षाणि, अंसशोषे सप्त
वर्षाणि, हस्तशोषे दश वर्षाणि, मुखशोषे एकं वर्ष, पार्श्वशोषे
त्रिवर्षाणि, हृदयशोषे युग्मवर्षाणि जीवनम् । सर्वागार्द्रस्य
हृच्छोषे हृदयस्थले प्रथमतः शोषणे षण्मासमध्ये तस्य पुंसः
मरणं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥

स्नान करचुकनेपर यदि पहले कर्णादि सूखजाय तो उपरोक्त तुल्य
फल जानना अर्थात् सब शरीर तो भीगा, रहै और कान पहलेही
सूखजाय तो बारह वर्ष, कंधे सूखजाय तो सात वर्ष, हाथ सूखे तो
दश वर्ष, मुख सूखे तो एक वर्ष, पार्श्व सूखे तो तीन वर्ष और हृदय
सूखे तो वह मनुष्य दो वर्ष तक जीवित रहता है । और यदि केवल
हृदयस्थल ही पहले सूखजाय तो छः महीनेके भीतर मृत्यु होजाती
है ॥ ८१ ॥

अन्यदाह ।

हस्ते न्यस्ते शिरसि यदि न छिन्नदण्डोऽस्य दृष्टः
षण्मासान्तर्न मरणभयं संप्रुटे हस्तयोस्तु ।
न्यस्ते शीर्षे यदि च कदलीकोरकामं तदन्तेऽष्टं
'नो' भीस्तिरति संलिले चेत्स्वशोफो न मृत्युः ॥८२॥
शिरसि स्वकीये हस्ते न्यस्ते यदि छिन्नदण्डो न दृश्यते

र्विना छायापुरुषदर्शने क्रमादायुर्वर्षाणि सप्त ७, दश १० एक १
त्रि ३, द्वि २ संख्यानि जीवतीति सम्बन्धः । शिरोविगमतः
अशिरस्कच्छायापुरुषदर्शने षण्मासान् जीवतीति श्लोकार्थः ।
अत्र स्वसंकेतितवर्णलक्ष्यां संख्या परित्यज्य अर्कादिसंज्ञाग्रहो
लोकप्रसिद्धिमाश्रित्य ॥ ७९ ॥

प्रातःकालके समय सूर्यको पीठदेके पश्चिमाभिमुख खड़ा होकर
अनिमिष (पलक न मिलें ऐसी) दृष्टिसे अपनी छायाको गलस्यलके
पास बहुत देरतक देखे । फिर नेत्रोंको सहसा ऊँचे लेजाय अर्थात्
आकाशको देखे तो एक अत्यन्त सफेद छायाका पुरुष दीखता है ।

उस छायापुरुषके यदि कान न दीखें तो बारह वर्षतक, अंग (कंठे)
न दीखें तो सात वर्षतक, हाथ न दीखें तो दश वर्षतक, मुख न दीखे
तो एक वर्षतक, पाई (पांशू) न दीखें तो तीन वर्षतक, हृदय न दीखे
तो दो वर्षतक, और शिर न दीखे तो ७ महाने पर्यंत छायापुरुषको
देखनेवाला मनुष्य जीवित रहता है ॥ ७९ ॥

अत्रैव विशेषमाह ।

हृद्रंघ्रदृष्ट्या मुनिसंख्यमासान् द्विशदृष्टौ तु मृति-
स्तदैव । सम्पूर्णदृष्टौ तु न वर्षमध्ये रोगो मृतिर्नति
वदन्ति सत्यम् ॥ ८० ॥

छायापुरुषस्य हृदये चैद्रंघ्रं दृश्यते तदा सप्तमासान् जीवति
शरीरद्वयं चेद् दृश्यते छायापुंसः तदा तदानीमेव मरणं जानी-
यात् सम्पूर्णं तु छायापुरुषे दृष्टे वर्षमध्ये रोगो मरणं च न
भवेदिति सत्यं ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

यदि उस छायापुरुषके हृदयमें छिद्र दीखे तो सात महाने पीछे और
दो शरीर दीखें तो उसी समय मृत्यु होती है । यदि छायापुरुष सामो-

पांग सम्पूर्ण देखे तो एक वर्ष किसी प्रकारका रोग वा पृथु कुछ नहीं होता है । यह सत्य कथन है ॥ ८० ॥

छायापुरुषप्रसंगेन शकुनान्तरमाह ।

स्नातस्य पूर्व कर्णादेः शोषे प्रागुक्तवत्फलम् ।

सर्वागार्द्रस्य हृच्छोषे षण्मासाभ्यन्तरे मृतिः ॥८१॥

स्नातस्य कृतस्नानमात्रस्य पुंसः कर्णादेः कर्णासहस्तमुख-
पार्श्वहृदयादीनां प्रथमतः इतरांगेभ्यः पूर्वं शोषे पूर्वश्लोकोक्त-
फलं योज्यम् । यथा कर्णशोषे द्वादश वर्षाणि, अंसशोषे सप्त
वर्षाणि, हस्तशोषे दश वर्षाणि, मुखशोषे एकं वर्षं, पार्श्वशोषे
त्रिवर्षाणि, हृदयशोषे युगमवर्षाणि जीवनम् । सर्वागार्द्रस्य
हृच्छोषे हृदयस्थले प्रथमतः शोषणे षण्मासमध्ये तस्य पुंसः
मरणं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥

ज्ञान करचुकनेपर यदि पहले कर्णादि सूखजाय तो उपरोक्त तुल्य
फल ज्ञानना अर्थात् सब शरीर तो भीगा रहे और कान पहलेही
सूखजाय तो चारह वर्ष, कंधे सूखजाय तो सात वर्ष, हाथ सूखे तो
दश वर्ष, मुख सूखे तो एक वर्ष, पार्श्व सूखे तो तीन वर्ष और हृदय
सूखे तो वह मनुष्य दो वर्ष तक जीवित रहता है । और यदि केवल
हृदयस्थल ही पहले सूखजाय तो छः महीनेके भीतर मृत्यु होजाती
है ॥ ८१ ॥

अन्यदाह ।

हस्ते न्यस्ते शिरसि यदि न चिच्छन्नदण्डोऽस्य दृष्टः
षण्मासान्तर्न मरणभयं संप्रुटे हस्तयोस्तु ।
न्यस्ते शोषे यदि च कदलीकोरकाभं तदंतेदृष्टं
नो भीस्तरति सैलिले चर्त्स्वशोफो न मृत्युः ॥८२॥
शिरसि स्वकीये हस्ते न्यस्ते यदि चिच्छन्नदण्डो न दृश्ये

तदा न मरणभयं भवेदिति ज्ञेयम् । अत्रैव प्रकारान्तरमाह—
सम्पुट इति । हस्तयोस्तु सम्पुटे शीर्षे मूर्ध्नि न्यस्ते धृते साते
तदन्तः तयोर्द्वयोः प्रकोष्ठयोरन्तरालं यदि कद्दलीकोरकाभं
रम्भाकलिकातुल्यं चेद्दृष्टं तदा नो भीः मरणादेरिति शेषः ।
अन्यच्चाह—सलिले जले चैत्स्वशेषः प्रजननं स्वकीयं तरेन्न
मज्जेत् तदा मृत्युर्न स्यादिति ज्ञेयम् ॥ ८२ ॥

यदि हाथको शिरपर लगानेसे हस्तदंड दूटाहुआ न दीखे तो छः
महीनेके भीतर मृत्युका भय नहीं होता है । यदि दोनों हाथोंका सम्पुट
बनाकर शिरपर लगानेसे सम्पुटकी पोलके भीतर कलाकी कोर(चमक-
दार लाल कली) जैसी दीखे तो मृत्युआका कुछ भय नहीं है । और
यदि अपनी इन्द्रो जलमें नहीं डूबे तो भी मृत्यु नहीं होती है ॥८२॥

उक्तशकुनानामुपयोगं स्तुतिं चाह ।

इमानि चिह्नानि विचार्य योद्धुं विनिश्चये स्वायुषं एव
यार्थात् । आहुर्हि मुख्यं शकुनं स्वदेहचिह्नानि बाह्यैः
शकुनैः किं मन्यैः ॥ ८३ ॥

इमानि प्रागुक्तानि चिह्नानि शरीरभवानि विचार्य स्वायुषः
सत्तार्या विनिश्चये एव योद्धुं शत्रुर्निर्गच्छेत् । न त्वल्पायुर्जानि
कथमेभिः शकुनमात्रैः स्वायुर्निश्चय इत्याह-आहुरिति । हियतः
कारणात्स्वदेहचिह्नानि मुख्यं शकुनमाहुः गर्गादिमुनयः । अत
एभिरायुर्निश्चय इत्यर्थः । अन्यैः बाह्यैः काकशिवादिवाशित-
रूपैः शकुनैः किंचिद्विसंवादित्वात्किं प्रयोजनमित्यर्थः ॥८३॥

उपरोक्त चिह्नोंको विचारकर आयुष्यका निश्चय करके फिर युद्ध
करना चाहिये । अपनी देहके चिह्नोंके शकुन ही मुख्य शकुन कहे
हैं । बाहरके सब मृग आदिके अन्य शकुन क्या हैं ? ॥ ८३ ॥

इति समरसारे शकुनप्रकरणम् ।

ग्रन्थसमाप्तौ प्रचयगमनाय मंगलप्रयोक्तुः प्रशंसा-
पूर्वकमाशिषं प्रयुक्त ।

सकलस्वरशास्त्रसारंमेतत्परिसंक्षिप्यं मया न्यगौदि
सर्वम् । गुरुभक्तिजुषोऽथ धर्मवृत्तेः स्फुरतादेतदभी-
प्सितार्थसिद्धयै ॥ ८४ ॥

सकलं समस्तं यत्स्वरशास्त्रम् ईशादिप्रणीतं तस्य सारम्
अव्यभिचारादत्युपयोगाच्च गुरुत्वात्सारं संक्षिप्य सर्वं मयान्यगादि
नाम यात्रांगादि उक्तम् । एतद् गुरुभक्तिजुषः गुरुभक्तस्य अथच
धर्मवृत्तेः धर्मवर्तनं यस्याभीप्सितार्थसिद्धयै स्फुरतात् चम-
त्कुर्यादित्यर्थः ॥ ८४ ॥

यह सब स्वरशास्त्रोंका सार मैने संक्षेपसे सम्पूर्ण कहा है । यह सो
गुरुभक्तियुक्त, धर्मवृत्तिवालोंके अभीप्सित सिद्ध करनेको स्फुरित होवे ८४

ग्रन्थकृत्स्वगोत्रोत्कीर्तनस्वपूर्वजनाम-
कथनपूर्वकं सम्बन्धमाह ।

वंशे वत्समुनीश्वरस्य शिवदासाख्यादुरुख्यातितः
सम्राडंग्रिचिदाप यस्य जनकः श्रीसूर्यदासोऽजंनि ।
यन्मातुर्यशसो दिशो दशै विशालाक्ष्यो बलक्षो
व्यधात्सं प्राज्यस्वरशास्त्रसौरविचिति रोमो वंस-
त्रैमिपे ॥ ८५ ॥

इति श्रीरामचन्द्रसोमयाजिविरचितं समरसारं सम्पूर्णम् ।
वत्समुनीश्वरस्य वंशे उरुतरप्रसिद्धेः शिवदासाख्यात् यस्य